

लहरें और कगार

बच्चन सिंह

लहरें और कगार

वचनसिंह



शारदासदन, भदवार, चंदवक, (जौनपुर)

प्रकाशक—

रामाज्ञासिंह,

शारदासदन, भदवार,

चंदवक (जौनपुर)

मूल्य २)

संस्करण-प्रथम १९५६ ई०

मुद्रक—

महताबराय

नागरीमुद्रण, वाराणसी

पिताजी माता और विद्या

की

याद में

पाठक से

आज के बदले हुए जमाने में नए और पुराने सामाजिक मूल्यों और संस्कारों में जो संघर्ष हो रहा है उसे प्रस्तुत लघु उपन्यास में व्यक्त करने में मैं कहाँ तक समर्थ हो सका हूँ इसके निर्णय का भार आपके ऊपर आ गया है, देखिए और हो सके तो मुझे भी बताइए।

लेखक

लहरें और कगार

संध्या के झुटपुटे में नाव नदी के किनारे छप् से लगी और पुर्वा हवा से उठी हुई लहरें नाव से टकरा गईं। महेन्द्र नाव से कूद कर किनारे आ गया। उसने दूर तक फैले हुए सूनेपन को देखा जो आपस में लड़ती हुई लहरों के शोर और पास में ही खड़े पीपल के पत्ते की खड़खड़ाहट से भयावह हो उठा था। इसी बीच नदी में ऊदबिलाव कूदा और धप् की आवाज हुई, फिर उस पार के एक कगार के गिरने से जो भीषण धमाका हुआ उससे वातावरण कुछ देर तक गूँजता रहा। महेन्द्र ने संध्या के अंधकार में डूबते हुए नदी के वर्तुल किनारे को देखा, वह नदी की लहरों से खेल रहा था, उसे रोमांच हो आया। क्षितिज पर कजरारे बादल झुक आए थे और बरसात होने की पूरी आशंका थी। महेन्द्र ने जल्दी से टार्च निकाला और चढ़ाव पार करने लगा। चढ़ाव पार करने पर एक गहरा नाला था। उसमें से होकर जानेवाला रास्ता पानी के बहाव से जगह जगह कटकर ऊबड़-खाबड़ हो गया था। टार्च की सफेद रोशनी में महेन्द्र उसे लाँघता हुआ सामने की अमराई में पहुँच गया। अमराई के कुंजों में अंधकार और भी घनीभूत हो गया था।

टार्च का बटन दबाकर वह आगे बढ़ने ही वाला था कि किसी के जोर से चीखने की आवाज आई—बाप रे मरा। उसे लगा कि कोई लड़खड़ा कर गिर पड़ा है। दौड़कर नाले के किनारे पहुँचने पर उसने टार्च की रोशनी में देखा कि कोई अधेड़ व्यक्ति औंधे मुख गिरा हुआ है और उससे कुछ दूर एक युवती उसकी ओर सँभल-सँभल कर बढ़ रही है। उसने झट नीचे उतर कर उस अधेड़ को बाहों के सहारे खड़ा किया। तब तक वह युवती भी वहाँ तक पहुँच चुकी थी। दोनों की सहायता से वह किसी प्रकार अमराई में पहुँचा।

'अब तो अंधेरा काफी घना हो गया है—बरसात का दिन और ऊबड़-खाबड़ रास्ता। आप लोग कहाँ जाइएगा ?'—महेन्द्र ने पूछा।

'यहाँ से थोड़ी दूर पर जाना है, भैया। आज ईश्वर ने तुम्हें यहाँ भेज दिया नहीं तो मैं जिन्दा न बचता। यह है मेरी बिटिया नीलू जो रात-दिन, सुख-दुख में हमारी छाया बनी रहती है। सच पूछिए तो मैं इसी की आँखों देखता हूँ और इसी के पाँवों चलता हूँ। आँखें तो अभी वैसी कमजोर नहीं हैं पर रास्ता चलने में पैर काँपने लगते हैं पिंडुलियों में दर्द होने लगता है। नीलू, अब तो समथर मिल गया है, हम लोग चले चलेंगे।'—उस अधेड़ व्यक्ति ने कहा।

महेन्द्र ने रोशनीमें उसको देखा कि उसके चेहरे पर थकान के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे पर भीतर के साहस की रेखाएँ भी कम उभरी हुई नहीं थीं।

'यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मैं आपके घर तक पहुँचा दूँ। हमारे पास रोशनी है। ऐसा न हो कि आप कहीं पर फिर भहरा पड़ें। कहाँ चलना है आपको ?'

'बरइछा बाबा के दाएँ से कछार में होकर जो रास्ता गया है, उसी के ऊपर हमारा गाँव है—तीन-चार घरों की छोटी-सी बस्ती।'

'इस समय आप आ कहाँ से रहे हैं ? इस वक्त तो आपको घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए।'

'क्या करें मजबूरी सब कुछ कराती है। हम कचहरी से आ रहे हैं। पैसे की कमी के कारण एक स्टेशन पहले ही उतर गये। कचहरी में कफन-खसोटों ने सब कुछ ले लिया। कचहरी में मोटे मोटे अक्षरों में लिखकर टँगा है—घूस लेना और देना पाप है—इतना मैं भी पढ़ लेता हूँ। लेकिन चारों ओर घूस का बाजार गर्म है। डिप्टी साहब की नाक के नीचे पेशकार लोगों का गला रेत रहे हैं तो कहीं अहलमद हाथ पसारे बैठे हैं। वकील साहब तो पैरवी के नाम पर खाते-कमाते हैं ही। सबसे मैंने कहा, मिन्नतें कीं कि मेरे पास इतना छोड़ दीजिए कि घर पहुँच सकूँ पर एक का भी हृदय नहीं पसीजा।'

महेन्द्र ने आश्चर्य से उसकी ओर घूमकर देखा—ऊपर से घिसा हुआ भी वह भीतर से सचेत है, जागरूक है। उसने पूछा—'कचहरी जाने की क्या आवश्यकता पड़ी दादा ?'

उसने एक लंबी साँस खींची, फिर कहना आरंभ किया—

'ठाकुर महिपालसिंह के कारण हम देश निकल रहे हैं। अब हम आप से क्या बतावें।' कहते-कहते जैसे उसके गले में कुछ अटक गया हो। वह फिर बोला—'हमारे पास दो बीघा खेत है। उसे हम कई पुश्त से जोतते आ रहे हैं, लेकिन उनका कहना है कि हमें उसके नजदीक नहीं जाना चाहिए। हम उसे छोड़ भी देते, पर उसी के सहारे हमारी जीविका चलती है। अच्छा, वह हमारा घर आ गया।'

घर पहुँच कर उसने महेन्द्र को एक टूटी-फूटी मड़ैया में चारपाई पर बैठा दिया और पास में पड़े हुए मोढ़े पर स्वयं बैठ गया। महेन्द्र ने उसे पास में बिछी हुई चारपाईपर बैठने के लिए कहा, पर सफेद

पोश बाबू के सामने उसे बैठने की हिम्मत नहीं हुई। महेन्द्र के बार-बार आग्रह करने पर वह चारपाई पर लेट गया।

इसी बीच नीलू एक बड़े गिलास में साढ़ी सहित गरम दूध लेकर आई और उसे महेन्द्र की ओर बढ़ाते हुए बोली—लीजिए थोड़ा दूध पी लीजिए।'

उसे पहली बार एक अपरिचित युवती इस तरह से दूध पिला रही है। उसने दीपक के प्रकाश में लंबी-लंबी बरौनियों वाली बड़ी-बड़ी रतनार आँखों को देखा, जिसमें दैन्य और करुणा के साथ ही गंभीरता और आत्म-गौरव का उज्ज्वल आलोक भी था। आँखों के चारों ओर हल्के काले रंग का घेरा भी था जो उन्हें आश्चर्य जनक रूप से सुन्दर बना रहा था। यद्यपि पुतलियों में विषाद का हल्का धुंध था पर उनमें दृढ़ता और विजय का तेज भी झाँकता प्रतीत होता था। दूध लेते समय उसकी भरी हुई, गोरी और चिकनी कलाई और लंबी-पतली उंगलियों पर भी उसकी दृष्टि दौड़ गई। जो अजीब आकर्षण पूर्ण और रागोद्दीपक थीं। इसी बीच नीलू की माँ भी आगई। उसने कहा—'अरे महेन्दर बाबू, आप हैं! आज तो आपने बड़ी दया करके नीलू के दद्दा के प्राण बचा लिए। नीलू आपकी बड़ाई करती हुई अघाती नहीं थी। नीलू के दद्दा! आप इनको नहीं जानते? बड़े ठाकुर के छोटे भाई हैं न!'

'ठा० महिपालसिंह के!'

'हाँ।'

नीलू के दादा झट चारपाई से उठकर जमीन पर घुटने के बल बैठ गए। वे महेन्द्र से अपनी ढिठाई के लिए क्षमा-याचना करने लगे। महेन्द्र ने देखा जैसे उसे विजली का तार छू गया हो। उसके पैर काँप रहे थे, चेहरा फक होगया था और आँखों में भय मिश्रित

करुणा भर आई थी। वह गिड़गिड़ा कर बोला—'बाबू साहब मैंने आपको पहचाना नहीं। आप घर पर नहीं रहते, इस लिए मुझ से यह भूल हो गई। चारपाई पर बैठकर मैंने भारी अपराध किया है। बाबू साहब से मत कहिएगा नहीं तो हमारी खैर नहीं है।' महेन्द्र ने दीपक के मंद प्रकाश में देखा कि उसकी आँखें बुरी तरह तर थीं।

'नहीं दादा, आप चारपाई पर बैठें, मैं इसे बुरा नहीं मानता।' महेन्द्र ने कहा।

'नहीं बाबू, यह नहीं हो सकता। आप लोग हमारे माँ-बाप हैं। कई पुश्तों से हमारी रक्षा करते आ रहे हैं। हम तो सदा ही आपकी प्रजा थे और प्रजा ही बने रहना चाहते हैं। जमाना चाहे कितना भी क्यों न बदले, पर ठाकुर ठाकुर ही रहेंगे और अहीर अहीर ही। छोटे बने रहने में ही हमारा कल्याण है।'

महेन्द्र ने घूमकर देखा नीलू अपने आँचल से आँसू पोंछ रही थी। आसमान भयानक रूप से काला हो गया था; वह पहले झिम झिम, टप टप फिर झम-झम बरस पड़ा। महेन्द्र उठा और जल्दी जल्दी अपने गाँव की ओर बढ़ गया।

महेन्द्र इस जुलाई से ही घर रह रहा था। इसके पहले वह विश्वविद्यालय में पढ़ता था और होस्टेल में रहता था। स्वभाव से ही गंभीर और अध्ययनशील होने के कारण वह बाहर के समाज में उतना घुल-मिल नहीं सका था, स्त्रियों से तो वह और भी दूर रहता था। उसकी दृष्टि में अध्ययन में ही नहीं बल्कि जीवन में भी स्त्री का संसर्ग अत्यन्त घातक था। संसार के कलह के मूल में दो ही वस्तुएँ हैं—स्त्री और धन। वैदिक काल, रामायण-महाभारत-काल सभी समयों में इन्हीं के लिए रक्त की नदियाँ बहीं। अमिताभ गौतमबुद्ध ने अपने संघ में इनका प्रवेश निषिद्ध किया था। अंत में इनके प्रवेश से ही

बुद्ध-धर्म के मठ अत्याचार के अड्डों और विलास के केन्द्रों में बदल गए। गोसाईंजी ने कहा है—'अवगुण आठ सदा उर रहहीं।' इस लिए उसने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि इस जाति से जितना दूर रह सकेगा रहेगा।

किंतु आज उस भोले ग्रामीण सौन्दर्य ने उसपर कुछ ऐसा जादू-सा कर दिया कि उसके विचारों की नींव खोखली मालूम पड़ने लगी। अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार करने के लिए वह बाध्य हो गया। सौन्दर्य और यौवन के इस अपूर्व संगम का जो दर्शन महेन्द्र को हुआ वह अभूत पूर्व था। वह कुछ इस तरह अनुभूतिमय हो उठा कि बुद्धि-वादी होने का उसका दावा अपने आप खंडित हो गया।

पर महेन्द्र ने अपने को सँभालने की कोशिश की। वह इस आकर्षण को मानवीय कमजोरी कहकर टाल देना चाहता था। ज्यों-ज्यों वह अपने भावात्मक उद्वेगों को दबाना चाहता था त्यों-त्यों वे और भी उसे विमन्थित करते जा रहे थे। उसे उस सौन्दर्य से लेना-देना कुछ भी नहीं है, फिर भी उसके मन में अकारण एक वेदना और टीस का धुँवा क्यों भरता जा रहा है। लाख समझाने पर भी उसका मन कुछ समझ नहीं पा रहा था।

उसके विचारों ने करवट ली और वह अपने भैय्या के संबंध में सोचने लगा। नीलू का दादा भैया के डर से काँप रहा था बेचारा। कितना दुःख भरा और संत्रस्त जीवन है उसका! जमीन्दारी टूट गई लेकिन उसका विष नहीं गया। इससे त्राण पाने का कोई उपाय नहीं है। गाँव के लठैत भैया के साथ हैं, किसकी मजाल कि उनके सामने सिर उठा सके।

और नीलू? उसकी आँखों में सहसा आँसू क्यों आ गए? भैया के अत्याचार से, पिता के मोह से? कितनी भोली-भाली और

सरल रमणी है वह। क्या उसकी जिन्दगी में कोई स्वप्न न होगा, रस न होगा, उफान और उद्वेलन नहीं उठता होगा! उह, हम से क्या मतलब? मैं उसके संबंध में सोचने वाला कौन हूँ? यह भावों का उद्वेग है, बुद्धि का व्यापार नहीं।

वह अपनी धुन में बढ़ा जा रहा था कि एक छोटे से गढ़े में उसका पैर पड़ गया। पानी की उछाल से उसका सारा कपड़ा भींग गया। घुटने तक कीचड़ में लथपथ वह दरवाजे पर आकर कपड़ा बदलने लगा कि उसके भैया घर से निकलते हुए दिखाई पड़े। उन्होंने पूछा—'क्यों महेन्द्र, तहसील से आने में इतनी देर क्यों हो गई?'

'नदी का उतार-पतार, बरसाती दिन और ऊबड़-खाबड़ रास्ता देर करने के लिए काफी थे।'

दो

ठा० महिपाल सिंह अपने पलंग पर बैठे हुए फर्शी गुड़गुड़ा रहे थे कि भगवानदत्त चौबे, रमेश पांडे और सरजू सिंह आ उपस्थित हुए। महिपाल की अवस्था ५० के लगभग होगी, भगवानदत्त बूढ़े हो चले थे, रमेश महेन्द्र का सहपाठी युवक था और सरजू लगभग ४० वर्ष के थे। इन लोगों को देखते ही महिपाल बोल उठे—'चौबे जी तो बूढ़े हुए पर रमेश तुम्हें तो तंबाकू पीना चाहिए। तंबाकू नहीं पीने से तुम्हारी जाति डरपोक हो गई है।'

'नहीं ठाकुर साहब, इसी लत में क्षत्रियों का राज्य गया, तलवार टूट गई, जमींदार का भी सर्वनाश हुआ। अब पता नहीं यह किस पर तुली हुई है।'—रमेश मुस्कराया।

'तुम क्या जानो। यह सर्वदा से रईसों की शान रही है। अकबर के दरबार में गड़गड़े का बड़ा महत्त्व था। जहाँगीर का तंबाकू तो सेब के खमीरे से बनता था। वह बहुत अच्छे गुलाबजल में साना जाता था। उसमें कस्तूरी, केसर, इलायची और न जाने क्या क्या चीजें मिलाई जाती थीं। फर्शी के मुहनाल से जब वह कश खींच कर धुएँ के गोल-गोल बादल उड़ाता था तब दीवाने खास में भीनी-भीनी सुगंध उड़ने लगती थी। तुम्हें क्या पता उस ठाट का ?'

'अभी रमेश तुम लड़के हो, रईसी शान-शौकत क्या जानो ? इनके पिताजी के जमाने की बात सुनकर तुम दंग रह जाओगे। उस समय बाकायदा दरबार लगता था। नाच-रंग की बहार रहती थी। कहीं पर भंग घुटती थी तो कहीं पर ठंढई छनती थी। असामियों के

यहाँ से दूध-दही बिना माँगे चला आता था। रेशमी दुपट्टा बाँध कर मुश्की घोड़े पर जब सरकार की सवारी होती थी, तब समा बँध जाता था। हम लोगों का धन्य भाग्य था कि उस जमाने में छानने-फूकने का अवसर प्राप्त हुआ। अब तो जैसे सब कुछ सपना हो गया, सब कुछ छिन गया। तब के पहाड़पुर में और अब के पहाड़पुर में पहाड़ और ऊँट का अन्तर है, बाघ और बिल्ली का अंतर है। जब तक ठाकुर साहब हैं तब तक गनीमत है।'—चौबे जी यह सब एक साँस में कह गए।

महिपाल के चेहरे पर गर्व की हल्की-सी दीप्ति छा गई।

'महेन्द्र की अनेक बातों से असहमत होते हुए भी उसकी एक बात तो मैं मानता हूँ कि जमाने के अनुसार हमें भी बदलना चाहिए। जहाँगीर चाहे जैसी तंबाकू पीता था, उसके राज्य में रईसी का चाहे जो स्वरूप रहा हो पर आज तो वैसा करने से काम नहीं चल सकता। सरकार जी चाहे जिस शान से मुश्की पर सवारी करते रहे हों किंतु आज तो उस तरह सवारी नहीं कसी जा सकती। जमींदारी के टूट जाने से सारी की सारी परिस्थितियाँ बदल गई हैं, हमें अपने को उन्हीं में ढालना होगा। वह महेन्द्र भी आ रहा है, जरा उसकी भी राय ले लीजिए।'

'बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल, तुम्हारे बाप सुरेश पांडे की इस खित्ते में कितनी धाक थी! बाप रे बाप कोई ऐसी पंचायत न थी जिसमें उनको बुलाया न जाता था। जहाँ वह न पहुँच पाते थे, वहाँ उनका सोंटा जाता था और फिर दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता था। भैंस उनके पास एक भी नहीं थी, पर दूध की कमी नहीं पड़ती थी। तरकारी का एक भी पेड़ न था पर तरकारी दोनों जून बनती थी। आम का बाग उनके पास नहीं था पर वे खाँचियों

आम हमारे घर भेजते थे। पहनते थे तो धोती, मिरजई और पगड़ी ही पर क्या मजाल कि उनपर मक्खी बैठे। सरकार के वे दाहिने हाथ थे। सरकार का संकेत मिला कि सोंटा लिए वहाँ हाजिर।'—भगवान दत्त के चेहरे पर भी एक हल्की-सी दमक आ गई।

'लेकिन आज के जमाने में जैसे आग लग गई है। कांग्रेसी राज क्या आया एक आफत आ गई। जमींदारी गई, परती-परास हाथ से खिसक गया, रोब-दाब मिटता जा रहा है, अपना कोई अधिकार नहीं रह गया। चमार-सियार सब वे ही हैं पर उनकी आँखों में दूसरा ही रंग आ गया है। एक पुकार पर जो खाना छोड़ कर दौड़े आते थे आज वे भैया-बाबू कह कर बुलाने पर भी कतरा जाते हैं। वे अपने को ठाकुर-ब्राह्मण से किसी प्रकार कम नहीं समझते। इसके लिए कोई न कोई उपाय निकालना होगा।'—सरजू जैसे रोब में आकर कह रहे थे।

'इसी लिए चाचा जी, जरूरत है कि हम अपने को बदलें। छोटे-बड़े का भेद-भाव भूल कर उन्हें अपनावें। यदि हम अपने को ठाकुर और ब्राह्मण समझते रहेंगे तो हमारे और उनके बीच की खाई और भी चौड़ी होती जायगी। कोशिश यह करनी चाहिए कि यह खाई चौड़ी होने के स्थान पर पटे। यह सब आप ही लोगों को करना है।'—महेन्द्र ने उपयुक्त अवसर पाकर कहा।

'झींगुर चिलम भरो', ठाकुर साहब ने कर्कश स्वर में आवाज देते हुए कहना आरंभ किया। 'यह जमाने का परिवर्तन है कि छोटे बच्चे बड़ों को शिक्षा दे रहे हैं। कोइरी, कुनबी, अहीर, धुनियाँ, चमार सब के सब हमारे सामने चारपाई पर बैठें। वे बढ़-बढ़ बातें करें और हम कानों में तेल डाले उनकी सुनते रहें। वे हमारी भूमि पर कब्जा

कर लें और हम टस से मस न हों। वे दस बार काम पर बुलाने पर न आवें और हम चुपचाप उनकी खुशामद करते रहें। तुम्हारी यही इच्छा है न ! बाप-दादों की सारी प्रतिष्ठा, उनकी समस्त मर्यादा हम परिस्थितियों के एक धक्के से चकनाचूर हो जाने दें। हमारी नसों में महाराणा साँगा और राणाप्रताप का जो रक्त दौड़ रहा है उसे शान्त हो जाने दें। मुझ से यह नहीं होगा।'—महिपाल की आँखें कुछ अरुण और भौंहें टेढ़ी हो गईं।

'चार अक्षर अंग्रेजी पढ़कर लड़कों का दिमाग बिगड़ जाता है। इनको बाप-दादों की मर्यादा का ख्याल कुछ भी नहीं रह गया है। जाति-कुजाति सबके यहाँ भोजन करना, छोटी जातियों को बराबरी का दर्जा देना पढ़ने-पढ़ाने में उनकी मदद करना इनका रोजमर्रा का काम हो गया है। सरकार तो इनकी सहायता करती ही है। ये स्कूल-कालेज के लड़के भी उन्हीं का पक्ष लेते हैं। मैं तो समझता था कि महेन्द्र बाबू पढ़-लिख कर सरकार का नाम उज्ज्वल करेंगे और ठाकुर साहब के काम में हाथ बटावेंगे, पर 'उपजेउ वंश अनल कुल घालक' की चौपाई इन पर अच्छी तरह लागू होती है।' - चौबे जी अपनी पगड़ी ठीक करते हुए यह सब कह गए।

'इसे तो रावण ने अंगद के लिए कहा था। अंगद का पक्ष ठीक था और रावण का नहीं।'—महेन्द्र ने संक्षेप में ही चौबे जी को उत्तर दिया।

चौबे जी एकदम बिगड़ खड़े हुए। वे बोले—'हाँ भैया मैं रावण, कुम्भकरण, विभीषण सब कुछ हूँ। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न आप ही लोग बने रहें। आप ऐसे राम न होते तो शुकदेव की हिम्मत होती कि ठाकुर साहब के विरुद्ध मुकदमा लड़ता।'

'उसके साथियों की क्या कमी हो सकती है ? यार-दोस्तों की वहाँ पर जो बैठकें होती हैं वे सब मुझे मालूम हैं। शुकदेव तो गया बीता

है। लेकिन नील्हू का विश्वास है कि अपने सौन्दर्य और यौवन से हाकिमों को भी अपनी ओर कर लेगी।'—ठाकुर साहब की तंबाकू जल चुकी थी और गुड़गुड़ी को उन्होंने मुँह से अलग कर दिया।

'पर नील्हू को भगवान ने अपने ही हाथों सँवारा है, उसकी शराबी आँखों में इतना नशा है कि हाकिम क्या बादशाह भी उसके हाथों बिना मोल बिक जाय। गजब का रूप है, गजब की अदा है। देखा नहीं भैया उस दिन···' इतना कह कर सरजू ने जो वीभत्स अट्टहास किया उससे सारा वातावरण गूँज उठा।

महेन्द्र को तो जैसे काठ मार गया। उसे सरजू की बात पर सहसा विश्वास नहीं हुआ, रमेश से भी उसे कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई। वह मन ही मन अनेक प्रकार की उधेड़बुन में लग गया। नील्हू ने आखिर विवाह क्यों नहीं किया है ? गाँव में इतनी सयानी लड़की का विवाह क्यों नहीं हुआ वह भी अहीरों में। कुछ दाल में काला जरूर है। पर क्या केवल विवाह न करने मात्र से उस पर संदेह करना उचित है। इसे हृदय नहीं स्वीकार करता है, नील्हू ऐसी नहीं हो सकती—नहीं हो सकती।

एक एक कर सब लोग अपने अपने काम पर चले गए। पर महेन्द्र के सामने एक प्रश्न उपस्थित हो गया—क्या नील्हू वैसी लड़की है ? वह इसका उत्तर प्राप्त करने में कुछ ऐसा खो गया कि उसे और किसी बात की सुध ही नहीं रही। किंतु इसका कोई समाधान उसे नहीं मिला। समाधान के स्थान पर बार-बार प्रश्न ही उपस्थित होता था—क्या नील्हू ऐसी ही लड़की है ?

———

तीन

संध्या को घूमता हुआ महेन्द्र गोमती के तट पर जा पहुँचा। अमरूद के बाग में एक पेड़ के तने से पीठ टिका कर वह नदी की चंचल तरंगों को देखने लगा। उधर गोमती भरी हुई थी, इधर महेन्द्र। गोमती उत्साह और उमंग से भरी थी और महेन्द्र दर्द और टीस से।

गोमती की चंचल लहरें उस पार के कगार को काट रही थीं। कगार भीतर भीतर से काफी कट गया था पर ऊपर से वह ज्यों का त्यों दिखाई पड़ता था। महेन्द्र सोचने लगा कि क्या भैया, भगवान दत्त और सरजू आदि भीतर से कट नहीं गए हैं, किंतु ऊपर-ऊपर से यथापूर्व बने रहना चाहते हैं। इन छोटी-छोटी लहरों में इतनी शक्ति नहीं है कि कगार को शीघ्रातिशीघ्र काट दें, कुछ ऐसी शक्तिशाली लहरें होती हैं जो इन कगारों को अल्प प्रयास में ही काट गिराती हैं। पर वे लहरें इस देश की नदियों में नहीं दिखाई देतीं। यदि ये छोटी छोटी लहरें भी अपने प्रयत्न में लगी रहीं तो आज नहीं तो कल कगार का पतन निश्चित है।

इतने में एक जोर का धमाका हुआ और नदी का पानी कई गज ऊपर उछल गया। महेन्द्र सहसा जोर से हँस पड़ा—'अरे वह पहाड़-सा कगार देखते देखते जल में समाविस्थ हो गया। किन्तु नहीं अभी तो उसका एक अंश ही गिरा है। पूरा गिरने में अभी देर है। पर क्या उन मासूम लहरों में इतना बल है कि कगारों को ढहा सकें?'

पीछे से किसी ने चिल्ला कर कहा—नीलू गाएँ नाले की ओर जा रही हैं, उन्हें इधर ही हाँक ले आओ। यदि वे नाले के दलदल में धँसी तो उनका उद्धार बड़ा कठिन होगा। मुई उधर ही भागी जा रही हैं।'

महेन्द्र ने घूम कर देखा तो जुट्टे के पास नीलू की माँ खड़ी-खड़ी नीलू को निर्देश दे रही थी। इतने में ढोरों को हाँकती हुई नीलू भी दिखाई पड़ी। बादलों के रंध्रों से बरसती हुई सूरज की पीताभ किरणों में नहाती हुई नीलू कुछ अजीब जगर-मगर करती प्रतीत होती थी। उसका सौन्दर्य ऐसा मोहक बन गया था मानो रंगमंच पर नाट्य करती हुई नायिका पर रंगीन फोकस डाला जा रहा हो। उसने नजदीक आकर महेन्द्र को दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते किया और फिर अपनी माँ को बुलाया। नीलू की माँ ने आश्चर्य पूर्वक देखा कि महेन्द्र बाबू अमरूद की छाया में खड़े हैं। उसने अचकचा कर पूछा—'यहाँ कहाँ बाबू साहब !'

'यों ही घूमते-घामते नदी के किनारे चला आया था। आज मन नहीं लगा तो सोचा इधर ही सही।'

'अच्छा, घर लौटते समय हमारे घर से होकर जाइएगा। नीलू के दद्दा आपकी बहुत याद करते हैं।'

महेन्द्र चुप था। चलते समय नीलू ने भी कहा कि मैं दद्दा से कह दूँगी कि आप अभी आएँगे।

महेन्द्र अब भी मौन था। नीलू और उसकी माँ दोनों ने ढोर आगे बढ़ाए।

महेन्द्र नीलू के यहाँ जाने के लिए ही घर से चला था, पर साहस की कमी के कारण वह कतरा कर नदी के किनारे आ गया। अब भी उसके मन में द्वन्द्व बना हुआ था और वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच

पा रहा था। वह लगभग आधे घंटे तक और नदी की लहरों और कगार का युद्ध देखता रहा। लहर और कगार का युद्ध बंद तो नहीं हुआ—हो भी नहीं सकता—पर दोनों अंधकार में डूब गए थे। महेन्द्र घर की ओर लौट पड़ा।

बरइछा बाबा के पास आकर वह सहसा ठिठक गया। ढोर अपनी राह घर की ओर चले जा रहे थे पर माँ-बेटी बरइछा बाबा के सामने कई मिनट तक मत्था टेके रहीं। फिर दोनों ने मंदिर की प्रदक्षिणा की और दीपक जलाया कुछ देर तक वे हाथ जोड़े मंदिर के सामने खड़ी रहीं। दूसरे दिनों की भाँति आज नीलू ने पुनः थोड़े स्फुट स्वर में कहा, 'हे बरइछा बाबा, यदि हमारी इच्छा पूरी हुई तो हम आपको एक बकरे के स्थान पर दो बकरे चढ़ाएँगे और धूप-दीप से आपकी भलीभाँति पूजा करेंगे।' इसके बाद उसने बाबा के सामने पुनः मत्था टेका और अपनी राह ली।

महेन्द्र थोड़ा घूम कर आगे निकल गया। माँ-बेटी के इस अक्षय विश्वास पर उसे दया आई पर इस संबंध में वह अधिक नहीं सोच सका। उसे बार-बार नीलू का 'नमस्कार' याद आ रहा था। भला इस ग्रामीण बालिका को नमस्कार करना किसने सिखाया? नागरिक नमस्कार से इस नमस्कार में एक स्पष्ट अंतर था। पहला जहाँ कृत्रिम सौजन्य से पूर्ण तथा सहज आत्मीयता से रिक्त होता है वहाँ दूसरा आत्मिक सौहार्द और हार्दिक स्नेह से सिक्त और भोलेपन से अनुरंजित।

बरइछा बाबा से वह क्या वरदान माँग रही थी? उसकी क्या इच्छाएँ हैं? क्या बाबा उन्हें पूर्ण कर सकेंगे? उसकी नस-नस में बिंधी हुई वेदना को दूर करने का सामर्थ्य इस बाबा में कहाँ दिखाई पड़ता है! खैर, मुझे उससे क्या लेना देना है। इस समय तो प्रश्न

यह है कि उसके यहाँ चलना है अथवा नहीं। वहाँ चलने में बदनामी होगी लोग अकारण उँगलियाँ उठायेंगे। सरजू जैसे आदमियों ने उसे यों ही बदनाम कर रखा है। यदि लोगों ने मुझे वहाँ देख लिया तो सब लोग तिल का ताड़ बनाने लगेंगे। इसलिए वहाँ न चलना ही उचित है। पर नीलू क्या कहेगी? उसके घर के समीप पहुँचने पर उसके पैर अपने आप शुकदेव की मड़ई में जा पहुँचे।

शुकदेव लालटेन के प्रकाश में रामायण पढ़ रहा था—
'नारि विवश नर सकल गुसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥
शूद्र द्विजन्ह उपदेशहिं ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥'
आँखें ऊपर उठाकर देखने पर उसे महेन्द्र दिखाई पड़ा और वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। रामायण बंद करते हुए उसने महेन्द्र से चारपाई पर बैठने के लिए कहा।

'दादा, आप अपना रामायण पढ़ना बंद न करें। मैं अभी चला जाऊँगा।'

'नहीं बाबू साहब थोड़ी देर बैठिये तो सही। नीलू और उसकी माँ—दोनों अभी आ रही हैं। उन दोनों से रोज आपकी चर्चा किए बिना रहा नहीं जाता।'

महेन्द्र जैसे सिहर उठा। उसे शुकदेव की अभी-अभी पढ़ी हुई चौपाई याद आई—'नारि विवश नर सकल गुसाईं।' फिर तो उसके पिछले संस्कार जागृत हो उठे। उसने जोर देकर कहा—'नहीं दादा, आज तो मैं जा रहा हूँ, फिर कभी आऊँगा।' वह दो कदम भी नहीं गया होगा कि नीलू ने आवाज दी—'बिना कुछ खाए-पिए आप नहीं जा सकेंगे।' महेन्द्र ने घूमकर देखा तो सामने नीलू खड़ी थी। उसे लाचार होकर चारपाई पर बैठ जाना पड़ा।

नीलू घर में दूध लाने गई और उसकी माँ गायों को पगहे से अटकाने लगी। महेन्द्र ने शुकदेव से पूछा—'क्या हाल-चाल है दद्दा।'

'किसी तरह डीह बरह्मा की कृपा से दिन बीत रहा है।'

'इधर कोई नई बात तो नहीं हुई न।'

'सब उसी परमात्मा की कृपा है'—शुकदेव ने आकाश की ओर देखते हुए कहा—'मुझे फँसाने की क्या क्या चालें नहीं हुईं, बदनाम करने के लिए क्या क्या उपाय नहीं किए गए, पर अबतक बचता चला आया। आगे की राम जाने।'

'क्या बताएँ दादा, हमारे देश का इतना अधिक नैतिक पतन हो गया है कि···' महेन्द्र के मुख से नैतिक पतन शब्द निकल तो गया पर वह तुरंत सँभल गया। लेकिन नैतिक पतन का पर्याय ढूटने में उसे दो-एक क्षण का विलंब हो गया। बात करने का ढंग बदलते हुए उसने कहा—'हमारे यहाँ के लोग बहुत दुष्ट और नीच हो गए हैं। इनकी नीयत दुरुस्त नहीं रह गई है—किसका विश्वास किया जाय और किसका नहीं।'

'नीयत की बातें आपसे क्या कहूँ। आपसे भी कुछ कहते हुए संकोच मालूम पड़ता है।'

'मुझसे संकोच बिल्कुल न करें दादा। मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि मैं आपको कभी भी धोखा न दूँगा।'

'मुझे आप पर पूरा भरोसा है। बाबू साहब यद्यपि···'

'यद्यपि मैं ठाकुर साहब का छोटा भाई हूँ फिर भी हम दोनों के संस्कार और विचार अलग-अलग हैं।'—महेन्द्र ने संस्कार शब्द का

पुनः भाष्य करना चाहा, पर शब्द के अभाव में चुप ही रहना ठीक समझा ।

'यह नीलू जो मेरी आँखों की पुतली है, इसके पीछे मुझे क्या-क्या नहीं भोगना पड़ा ।' बूढ़े की आँखें गीली हो गई और कंठ भर आया। इसी बीच दूध लिए हुए नीलू आ गई। बूढ़े ने नीलू को टरकाने की गरज से कहा—'बिटिया तू गायों को दुह ले और चिलम भर कर लेती आ ।'

नीलू के चले जाने पर बूढ़े ने पुनः कहना आरंभ किया—'संतान की इच्छा भला किसे नहीं होती बाबू साहब ! मेरी बुढ़िया ने इसके लिए कुछ भी उठा नहीं रखा। ओझा वैद्य से लेकर दरगाह जाने तक एक भी उपाय इससे नहीं छूटा। पड़ोस की कई स्त्रियाँ दरगाह जाकर, पीर की कृपा से, संतानवती हो गईं। किंतु मेरे ललाट में जब विधाता ने रोना ही लिखा था तब हँसने का कहाँ अवसर मिले। नीलू को ही मैंने अपना लड़का और लड़की दोनों समझा ।' बूढ़े ने खँखार थूका और कुछ देर के लिए चुप हो गया।

दो-चार ठंढी साँसे भरता हुआ वह पुनः बोला—'भगवानदत्त को तो आप जानते ही होंगे ।'

'हाँ, अच्छी तरह से।'

'उनकी बात मैं आपसे क्या कहूँ, कहने लायक नहीं है ।'

'कोई बात नहीं दद्दा, मुझसे न कहेंगे तो किससे कहेंगे ।'

'अच्छा बेटा, मैंने नीलू का विवाह बचपन में ही एक ऐसे लड़के से कर दिया जो हमारे घर रह सके इस अभागी को दर्जा सात तक

पढ़ा दिया। बड़ा सुशील लड़का था वह। ठाकुर साहब के कहने से मैंने उस लड़के को भगवानदत्त के यहाँ नौकर रख दिया। वह दिनभर उन्हीं के यहाँ रहता था और रात को यहाँ चला आता था।'— शुकदेव ने पुनः एक गहरी साँस ली।

वह बोला—'भगवान दत्त के लड़के रमई ने एक दिन मुझसे कहा कि कन्हई को बंबई क्यों नहीं भेज देते। वहाँ जाकर कुछ कमा-एगा जिससे तुम्हारी जिन्दगी भी मजे में कटेगी और नीलू को भी आराम मिलेगा। लेकिन इसके लिए मैं तैयार नहीं हुआ। परंतु एक दिन उसे बहका कर उन्होंने उसे बंबई भेज दिया। दो-चार महीने बंबई रह कर १०-५ रुपए वहाँ से भेजा भी। लेकिन आज ५ वर्ष हुए उसका कुछ भी पता नहीं लग रहा है। सुनने में आया वह समुन्दर पार किसी टापू में चला गया है। टापू में भेजने की जालसाजी भी रमई ने ही की है। ऐसा करने में गाँव के और कई लोगों का हाथ है। मैंने नीलू से दूसरा घर करने के लिए बार-बार कहा पर मरी कुछ सुनती ही नहीं। काम-काज में ऐसी बेसुध रहती है कि जैसे उसे और किसी बात की चिन्ता ही नहीं है। रमई एक दिन यहाँ आकर कुछ इस तरह की बातें नीलू से कह रहा था कि उसे सुनकर नीलू रोने लगी। उसने रमई की सारी कहानी मुझसे बताई। दूसरे दिन ज्यों ही रमई यहाँ पर आया त्यों ही मैंने उससे कहा—रमई पंडित यहाँ से चले जाइए, नहीं तो अपनी खैरियत मत समझिएगा। मारते-मारते हाथ-पैर तोड़ दूँगा। बूढ़ा हूँ तो क्या तुम्हारे ऐसे मरियलों को ठीक करने की ताकत अभी मुझ में बाकी है। तब से रमया नहीं आया। लेकिन जाते वक्त कहता गया—यदि तुम्हारी हेकड़ी न तोड़ दूँ तो ब्राह्मण नहीं।'

इतने में नीलू चिलम लिए हुए आ गई। महेन्द्र ने नीलू की

ओर उड़ती निगाहों से देखा, उसके लहरदार बाल हवा में उड़ रहे थे। फिर शुकदेव से कहा—दद्दा आप अपनी आन पर अड़े रहें, दुनिया में कोई ताकत नहीं है जो तुम्हें तोड़ सके। अच्छा नील्, मैं चला।'

नील् ने हाथ जोड़ कर पुनः नमस्कार किया। महेन्द्र ने प्रति-नमस्कार में सिर झुका दिया।

———

चार

दूसरे दिन दोपहर को महेन्द्र रमेश के दरवाजे पर पहुँचा। रमेश ने महेन्द्र को देखते ही कहा—'आओ भाई, जिस राह पर मैं दो वर्ष पहले ही पहुँच गया था उस राह पर तुम दो वर्ष बाद आए। मैंने आई० ए० पास करने के बाद जो निश्चय किया वह तुमने बी० ए० करने के बाद। विचारों में तुम दो वर्ष पीछे हो।'

'हमको तो लगता है गाँव को पढ़े-लिखे लोगों की अत्यधिक आवश्यकता है। गांधीजी ने इस बात को बहुत पहले अनुभव किया था और भावेजी आज इस पर कितना जोर दे रहे हैं।'

'जब मैं घर आया तब मुझे भी इसी प्रकार के विचार सता रहे थे, लेकिन गाँव की गंदी राजनीति में पकड़कर सबके सब नष्ट हो गए। मुझे भी उन्हीं लोगों का साथ देना पड़ा जिन्हें मैं अत्यंत कुत्सित समझता था।'

'गाँव के सभी लोगों को गंदा समझ लेना, ईमानदारी के विपरीत है। गाँव में ऐसे लोगों को संगठित किया जा सकता है जो नैतिक दृष्टि से काफी ऊँचे हों। इन्हीं लोगों के सहारे गाँव की सफाई हो सकती है।'

'कथनी और करनी में बहुत अंतर है, महेन्द्र। यह काजल की वह कोठरी है जिसमें प्रवेश करने मात्र से सयाने से सयाने लोग कालिख की लीक से बच नहीं सकते। हमारा पक्का विश्वास है कि अभी ५० वर्षों तक गाँवों में विशेष परिवर्तन नहीं लाया जा सकता।'

'तुम्हारी बातों से मैं सहमत नहीं हो सकता। यदि हमारे मन में त्याग की भावना और लगन हो तो दो-चार वर्षों में ही गाँव को बदला जा सकता है। पहले आवश्यकता है वैधानिक क्रांति की। मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूँ कि तुम हमारे साथ हो अथवा नहीं।'

'लेकिन जिस प्रकार की क्रांति की कल्पना तुम कर रहे हो वह गांधीवादी विचार धारा के अनुसार संभव नहीं है। क्या तुम समझते हो कि केवल कानून बना देने से अछूतों को मंदिर में प्रवेश कराया जा सकता है? क्या तुम जानते हो कि ब्राह्मण क्षत्रिय इतर जातियों को अपने समकक्ष बैठाने की बात सोच सकते हैं?'

'इसके उत्तर में मुझे भी कुछ प्रश्न ही करने हैं। क्या इतर जातियों की राजनीतिक चेतना के संबंध मेंऐसी कल्पना की जा सकती थी? क्या उनके बच्चों की उच्च शिक्षा के संबंध में कभी सोचा जा सकता था? क्या ब्राह्मण-क्षत्रिय के सम्मुख उनके तनकर खड़े होने की बात संभव थी?'

महेन्द्र की बातों में तथ्य देखकर रमेश ने अन्य प्रकार से तर्क करना आरंभ किया। उसने कहा—'लेकिन आज हम सहसा वैचारिक क्रांति नहीं उपस्थित कर सकते। क्षत्रिय-ब्राह्मण अपने जातीय बड़प्पन को एक रात में नहीं छोड़ सकते। उन्हें क्रमशः राह पर लाना होगा। ऐसी स्थिति में इतर जातियों को भी समझ से काम लेना होगा। यदि वे सहसा अपने को उनके समकक्ष समझ लेंगे तो वर्ग संघर्ष अनिवार्य हो जायगा।'

'इतर जातियाँ सहसा अपने को ब्राह्मण-क्षत्रियों के समकक्ष कहाँ समझ रही हैं? बदली हुई परिस्थितियों में ब्राह्मण-क्षत्रिय ही कम बदल रहे हैं। बहुत कुछ धरती और अधिकार के चले जाने के बाद भी वे अपने अधिकारों को यथापूर्व बनाये रखना चाहते हैं। ऐसी

स्थिति में थोड़ा-बहुत कशमकश अनिवार्य हो जाता है। यह संघर्ष मार्क्सवादी अर्थ में वर्ग-संघर्ष नहीं है।'

'उस अर्थ में न हो, पर है तो एक प्रकार का संघर्ष ही। वे क्षत्रिय-ब्राह्मणों की शिकिमी जमीन दबाए बैठे हैं। क्या इसे नैतिक कहा जा सकता है? ठाकुर साहब तो कहते हैं—पुत्ते जाए कवन गुण, अवगुण कवन मुएण, जा बप्पी की भुंअहड़ी चम्पजई अवरेण; जिस पिता की भूमि औरों द्वारा रौंदी जा रही है उसके पुत्र का होना और न होना बराबर है।'

'यह कितनी छोटी सी बात है। हम यदि स्वार्थ में इतने अंधे हो जायँगे तो दूसरों के स्वार्थ को कैसे समझ सकेंगे। हमारे पास इतनी अधिक जमीन पड़ी हुई है लेकिन दूसरों के पास हम दो एक बीघा भी नहीं रहने देना चाहते।'

'आपकी समझ से यह अदनी बात है, लेकिन गाँव के सभी लोग महेन्द्र बाबू नहीं हैं। गाँव में ठाकुर साहब हैं, भगवानदत्त हैं, सरजू और किशोर हैं। वे वे हैं और आप आप। सबका अपना अलग अलग व्यक्तित्व है।'

'इसलिए आवश्यकता है कि युग के अनुकूल सोचनेवाले लोग संघटित होकर वैचारिक क्रांति में योग दें। मैं समझता हूँ कि पांडे हमारे साथ हैं।'

'इसके लिए पुराणपंथी लोगों से जबरदस्त संघर्ष लेना पड़ेगा, क्या इसके लिए किसी भी सीमा तक जाने में तुम तैयार हो?'

'अवश्य। लेकिन इसमें पांडे का सहयोग आवश्यक है।'

'यदि हमारा सहयोग प्राप्त नहीं हुआ तो तुम भी कन्नी काट जाओगे, क्यों? इससे साफ है कि तुम्हारे विचारों में अटूट दृढ़ता नहीं है, अकेले चलने का संकल्प नहीं है।'

'अपनी दृढ़ता के संबंध में तुम्हें पूरा विश्वास दिलाता हूँ कि मैं टूट जाऊँ पर मेरे विचार नहीं टूट सकते, लेकिन तुम्हारे बिना मैं अधूरा रह जाऊँगा।'

'एक बार मैं तुमसे और पूछना चाहूँगा कि इन समस्त विचारों और धारणाओं के मूल में कहीं पर तुम्हारा वैयक्तिक मोह तो नहीं छिपा हुआ है।'

महेन्द्र इसका उत्तर दे नहीं पाया था कि रमेश की माँ आ गई। महेन्द्र ने चारपाई से उठकर उसे प्रणाम किया।

महेन्द्र को देखते ही उसने आश्चर्यपूर्वक कहा—'अरे महेन्द्र तुम हो! कब आए बेटा? अच्छी तरह से तो थे न!'

'हाँ, माँ।'

वह तुरत भीतर गई और एक गिलास दूध लिए पुनः लौट आई। उसे महेन्द्र को देते हुए बोली—'ले बेटा इसे पी ले।'

महेन्द्र ने बिना कुछ कहे गिलास हाथ में ले लिया। 'लेकिन माँ यह भेद-भाव क्यों? मुझे पीने के लिए मट्ठा दिया था और महेन्द्र को दूध।' हँसते हुए रमेश बोला। 'वह हमारा अधिक दुलारा बेटा है, तुम कम।' माँ ने भी हँसकर कहा।

'अच्छा, आज से यही सही।'

'वाह रमेश, यह मेरी माँ नहीं है क्या?'

'रमेश, महेन्द्र की माँ इस गाँव में मेरी सब से प्रिय सखी थी। हम लोगों का उठना-बैठना, खाना-पीना देखकर सब लोग यही कहते थे कि दोनों सगी बहने हैं। तुम लोगों को मालूम नहीं जब वह आँखें मूँद रही थी तब महेन्द्र को मेरी गोद में देते हुए कहा था कि बहन आज एक माँ महेन्द्र को छोड़कर जा रही है लेकिन दूसरी उसकी

देख-रेख करने के लिए बहुत दिन तक जिएगी। महेन्द्र तब ७–८ वर्षों का था। मेरी ओर संकेत करते हुए उसने कहा था—बेटा, मैं तो तुम्हारी दुश्मन थी, तुम्हारी माँ वह है।'

महेन्द्र की आँखें डबडबा आईं। उसने कहा—'माँ अब तो मैं घर पर ही रहूँगा और तुम्हारे पास आने के अवसर मिलते रहेंगे।'

'लेकिन माँ जब से यह कालेज से आया है इसको एक न एक फितूर सूझा करता है। तुम्ही इसको ठीक कर सकती हो।'—रमेश बोला।

'तुम बिलकुल गलत कहते हो। यह मेरा लाल है, जो कुछ करेगा उससे सब का कल्याण होगा।'

महेन्द्र ने माँ के पैरों की धूल मस्तक पर चढ़ाई और चलने की आज्ञा माँगी।

'यदि कोई काम पड़े बेटा तो मुझ से निस्संकोच कहना, माँ से लजाया नहीं जाता।'—रमेश की माँ भगवती ने गद्‌गद वाणी में कहा।

महेन्द्र वहाँ से चला आ रहा था पर रह रह कर रमेश की एक बात उसे काँटे-सी चुभ रही थी। रमेश ने क्यों कहा कि समस्त धारणाओं के मूल में कोई मेरी वैयक्तिक आसक्ति तो नहीं है। कौन सी वैयक्तिक आसक्ति हो सकती है? किसी ने मेरे संबंध में कोई अफवाह तो नहीं फैला दी है? यदि कोई झूठी अफवाह फैल भी जाय तो क्या उससे डरना आवश्यक है? वह अपनी कमजोरियों को बार-बार टटोल रहा था पर किसी सुनिश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता था।

———

पाँच

साँझ ढल गई थी, वृक्षों की लंबी-लंबी साँवली परछाइयाँ अंधकार में लीन हो गई थीं। ठाकुर साहब दरवाजे पर बैठे हुए फर्शी पी रहे थे। बीच-बीच खाँसते भी जाते थे। उनके खाँसने की आवाज सुनकर भगवान दत्त को संतोष हुआ। वे तुरत ठाकुर साहब के पास आकर बैठ गए। ठाकुर साहब फर्शी पीते जा रहे थे। वे मौन थे और भगवान दत्त भी चुप थे। आखिरकार भगवान दत्त ने ही मौन भंग किया—

'उस संबंध में आप क्या सोच रहे हैं। जल्दी से जल्दी कोई उपाय निकालना चाहिए।'

'हाँ, मैं भी तो वही चाहता हूँ। लेकिन कुछ सुझाई नहीं पड़ता।'

'मैंने तो आपका बहुत नमक खाया है, वह हमारे रोम-रोम में भिद गया है। जब आपके पिताजी अर्थात् सरकार जी जीवित थे तब मैं संध्या को रोज यहीं पर दही और औटाया हुआ दूध खाया करता था। आस-पास का भला कौन ऐसा गाँव है जहाँ के लोग यहाँ रुपया लेने न आते रहे हों। सब कुछ मेरे ही मार्फत तय होता था। आज क्या कोई बनेगा। बंबई कलकत्तें में दूध-कोयला बेचकर कोई सरकार बनने का दम भरे तो उसकी मूर्खता है।'

'हूँ।' कहकर ठाकुर साहब पुनः फर्शी गुड़गुड़ाने लगे।

'यदि आपका इतना अधिक ऋण हमारे ऊपर न होता तो मैं इस समय शायद यहाँ पर न आया होता। हमारा तो खून जल गया।



अभी कुछ नहीं हुआ है । आप चाहें तो स्थिति सँभाली जा सकती है । आपके कुटुंब की इतनी अधिक प्रतिष्ठा थी कि मैं क्या बताऊँ ? लेकिन आज वह डूब रही है । उसे डूबते देखकर मैं मर जाता हूँ ।'

'शरबत मगवाऊँ चौबे जी ; दूध भी है ।'

संझा तो हो गई है और घर से शरबत ही पीकर चला हूँ, पर अच्छा मँगा दीजिए । आपका तो नमक सदा से खाता रहा हूँ । आपके यहाँ खाने-पीने में क्या आपत्ति हो सकती है ।'

'झींगुर'—ठाकुर साहब का बुलाना नहीं था कि झींगुर वहाँ उपस्थित हो गया । ठाकुर साहब ने उसे अच्छी तरह समझा कर शरबत ले आने के लिए कहा । ज्योंही झींगुर घर की ओर जाने लगा त्योंही चौबे जी ने कहा—'झींगुर देखना साढ़ी न निकलने पावे ।'

'हाँ, हाँ झींगुर साढ़ी सहित दूध ले आना'—ठाकुर साहब ने पुनः झींगुर को समझाते हुए कहा ।

'तो ठाकुर साहब जो बात मैं आप से कहने आया था, वह तो रह ही गई ।'

'क्या है ?' ठाकुर साहब की उत्सुकता कुछ बढ़ी ।

'उसे कहने में मुझे बेहद शर्म मालूम पड़ती है । आप सुनेंगे तो पता नहीं क्या सोचें ।'

'अरे चौबे जी, आप जैसा हितैषी हमारा और कौन हो सकता है ? और लोग तो हमारी जड़ खोदने पर कमर कसे बैठे हैं ।'

'फिर भी बात ऐसी गंभीर है कि मुझसे कुछ कहते नहीं बनता । पता नहीं इन लड़कों को क्या हो गया है ?'

'क्या बात है चौबे जी, जरा मैं सुनू भी तो सही ।'

चौबे जी ने चारों ओर सिर घुमा कर देखा कि कोई आ-जा तो नहीं रहा है। फिर बोले 'ठाकुर साहब सुना है दीवालों के भी कान होते हैं। अतः मैं अपनी बात एकांत में ही कह सकूँगा।'

'यहाँ कोई तो नहीं है।' तब तक झींगुर शरबत लेकर आता दिखाई पड़ा। 'अच्छा शरबत पी लीजिए तो कहिए।'

चौबे जी ने शरबत पीकर तोंद पर हाथ फेरा और जोर की डकार ली; फिर अपनी पगड़ी ठीक करते हुए बोले—'आज तो सरकार के जमाने का शरबत याद आ गया—साढ़ियों से लदालद। हैं तो आप उन्हीं के लड़के। बाँस की जड़ से बाँस ही उत्पन्न होता है। गाँव में जो कुछ है आप ही तक है। और सब लोग अभी बना करें।'

'आप क्या बात कह रहे थे चौबे जी ?'

'हाँ, तो मैं कह रहा था। क्या कहूँ कुछ कहा नहीं जाता है। उस दिन रात को रमया-जब रमया ने मुझसे कहा तो मैं एकदम भौंचक्का हो गया। वह उस पार टेशन से आ रहा था। अमरूद के बाग में महेन्द्र बाबू नीलू से पता नहीं क्या साँय-साँय बतला रहे थे। बाद में वह झिल्लू मल्लाह के यहाँ चला गया। उसके लड़के को रेंगनी पकड़े हुए है और झिल्लू रेंगनी बहुत अच्छा झारता है। घर लौटते समय भेद लेने के लिए शुकदेव के घर से घूम कर आ रहा था तो देखा महेन्द्र बाबू चारपाई पर बैठे हुए थे और नीलू मुस्करा-मुस्करा कर उनसे बातें कर रही थी।'—चौबे जी ने गहरी साँस ली।

वे फिर बोले—'वहीं दूसरी चारपाई पर ससुरा शुकदेउआ बैठा हुआ था। वह कुछ भी नहीं बोल रहा था।'

'शुकदेउवा का यह मजाल कि महेन्द्र के सामने चारपाई पर बैठे ?'—ठाकुर साहब गरज कर बोले—'अच्छा मैं इसका उपाय करता हूँ।'

'रमया तो कह रहा था कि महेन्द्र बाबू नीलू का हाथ पकड़े हुए थे। छिः छिः दुनिया बह गई। रईसों के लिए यह शोभा की बात मानी जाती थी। अपने घरों में पहले रईस लोग रखेल छोड़ रखते थे। लेकिन इस तरह गली-गली घूमकर नहीं—वे वह भी करते थे तो बड़ी शान से। मैं तो कहता हूँ महेन्द्रबाबू का विवाह कर दीजिए। नहीं तो लड़का हाथ से गया। आप तो सीधे आदमी हैं अपनी तरह से सबको जानते हैं। हाय! आज यदि सरकार जीवित होते तो शुकदेव के शरीर का चमड़ा उधेड़ देते।'

'मुझे इसकी भनक तो लगी थी, पर यह नहीं जानता कि महेन्द्र इतना बेशर्म हो जायगा। बेहयाई की भी सीमा होती है। शुकदेव तो इसी की कमाई खाता है, बेईमान कहीं का। और उस कुलटा को मैं क्या कहूँ?'

'सुना है, वह पढ़े-लिखे लोगों का एक दल बनाकर गरीबों की सहायता का ढोंग भी रच रहा है। यदि आपको विश्वास न हो तो रमेश को बुलाकर पूछ लें। इससे क्षत्रिय-ब्राह्मण सबकी नाक कट जायगी।'

'यही नया जमाना है। इसी की वह स्तुति करता फिरता है। चारों ओर मनमानी, बेईमानी और उच्छृङ्खलता। इस बेशर्मी और बेहयाई का नाम नया जमाना है। हम लोगों को भी इसी के अनुसार अपने को ढालना होगा नहीं तो गुजर नहीं है।'

'अब तो ठाकुर साहब जब दूसरा जन्म होगा तब ऐसा हो सकेगा। इस तरह के भ्रष्टाचार में न कभी रहे और न इसका सपना देखा। अब राम-राम के सिवा हमको क्या करना है। सरकार के जमाने में अब क्या कहूँ?'

'अच्छा, झींगुर चिलम दे जाओ। चौबे जी कल इसी वक्त आप आ जायँ तो अच्छा हो।'

छः

दूसरे दिन शाम को ठाकुर साहब के दरवाजे पर रमेश सरजू, भगवानदत्त आ विराजे। ठाकुर साहब की गुड़गुड़ी अनवरत गति से धधक रही थी। वे थोड़ी देर तक मौन रहे और दरवाजे पर एकदम सन्नाटा छाया रहा। भगवानदत्त ने सन्नाटा तोड़ने की गरज से कहा—'ठाकुर साहब आपने कुछ प्रबंध किया ?'

'प्रबंध करना तो मेरे बाँए हाथ का खेल है, पहले हमें भाई से ही निबटना है।'

'तो अभी आपने उससे पूछा नहीं।'

आप लोगों के सामने ही निबटारा होगा। लेकिन पहले मैं रमेश से ही कुछ पूछना चाहता हूँ। क्यों ? रमेश महेन्द्र तो तुम्हारा मित्र है न।'

'कहा जा सकता है।'

'क्या तुमने उसके बारे में कुछ सुना है ?'

'जी हाँ !'

'यदि वह बात सच निकली तो मुझे डूबने को जल भी नहीं मिलेगा।'

'ठाकुर साहब बिल्कुल ठीक कह रहे हैं' भगवानदत्त बोले, 'उसने सात पुरखों की नाट कटाई है। सरकार के जमाने में ...।'

भगवानदत्त की पिटी-पिटाई बातों में कोई रस न लेते हुए ठाकुर साहब ने बीच में ही टोककर कहा—चौबेजी, कहिए तो महेन्द्र को बुलाया जाय।'

'जरूर ।'

महेन्द्र ने समझा कि आज का वातावरण कुछ गंभीर है। इसलिए वह सबके पीछे जा बैठा। ठाकुर साहब ने महेन्द्र को आगे बुला लिया और जिस चारपाई पर भगवानदत्त बैठे हुए थे उसी चारपाई पर बैठने के लिए कहा। महेन्द्र वहाँ पर आकर उसी प्रकार बैठ गया जिस प्रकार मजिस्ट्रेट के सम्मुख फँसा कर लाया गया कोई अभि युक्त। फिर भी उसके चेहरे पर किसी प्रकार का भय नहीं था बल्कि वह उल्टे अन्तर के सत्य से दीप्त हो रहा था।

ठाकुर साहब ने धीरे से, पर अत्यंत गंभीर स्वर में कहा—'क्यों महेन्द्र, तुम्हारे बारे में कुछ ऐसी अफवाहें उड़ी हैं जो सत्य सिद्ध होने पर अतिशय शर्मनाक प्रतीत होंगी। अब तक हमारे कुटुंब में एक से एक बड़े और शानदार लोग हुए हैं। उनकी प्रतिष्ठा पर बट्टा लगाना किसी भी प्रकार शोभन नहीं कहा जा सकता।' आज उनकी आत्माएँ घृणा और असंतोष से चीख रहीं होंगी।'

'भैया, मेरी समझ में यह बात आ नहीं रही है। यदि कुछ खोल कर साफ-साफ कहें तो मैं भी कुछ उत्तर दूँ।'

ठाकुर साहब ने रमेश की ओर देखा। रमेश सिर पर हाथ फेरते हुए बोला—'महेन्द्र, नाराज होने की बात नहीं है। यदि अपने घरके संबंध में किसी प्रकार की बात वातावरण में फैल रही हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न प्रत्येक समझदार व्यक्ति करता है। मैं समझता हूँ कि कुछ पूछे जाने पर तुम नाराज नहीं होगे।'

महेन्द्र रमेश की ओर एकटक देखता रह गया। रमेश ने चौबे जी की ओर रहस्य पूर्ण दृष्टि से देखा, पर चौबेजी कुछ न बोले। फिर रमेश ने ही कहा—'चौबेजी कह रहे थे...।'

'भाई चौबेजी का नाम लेने की क्या आवश्यकता है ? क्या तुम नहीं जानते ? मैं तो इस कुटुंब का एक पुराना सेवक हूँ। जो अपना कर्त्तव्य समझता हूँ उसे कर गुजरता हूँ। बाद में चाहे जो हो।' चौबेजी ने बात काटते हुए कहा। इस रहस्य को प्रकट करने का भार पुनः रमेश पर पड़ा। वह बोला—'मैं क्या बताऊँ, मैंने सुना है, लोग-बाग भी कहते हुए सुने जाते हैं कि महेन्द्र नीलू के यहाँ जाते हैं।'

ठाकुर साहब ने गुड़गुड़ी छोड़कर महेन्द्र की ओर ऐसे देखा जैसे बाघ बकरे की ओर देखता है।

महेन्द्र ने धीरे से कहा—'जी, मैं वहाँ दो-चार बार अवश्य गया हूँ।'

'क्यों गए हो, नालायक !'—ठाकुर साहब इतने जोर से तड़पे कि पड़ोस के आदमी भी दूर से ही तमाशा देखने के लिए जुट आए।

'इन्सानियतके नाते और क्यों भाई साहब !'—महेन्द्र ने भी थोड़ी जोर की आवाज में उत्तर दिया।

'तुम्हारी यह मजाल ? बुलाऊँ रमई को, उसका हाथ पकड़-पकड़ कर जो गुलछर्रे उड़ाते हो वह सब मुझे मालूम है। बाहर बाहर से समाज सुधारक और सधुई की रामनामी ओढ़कर मुझे नहीं ठग सकते। चरका किसी और को देना।'—ठाकुर साहब इस बार और भी जोर से बोले।

'गलत, बिलकुल गलत, झूठ—सफेद झूठ। यह आरोप अत्यंत नीचतापूर्ण और कुत्सित है।'

'तुम यहाँ से निकल जाओ, मैं ऐसे कुल कलंक का मुख नहीं देखना चाहता।'

'भाई साहब, अब मैं बरदाश्त नहीं कर सकता अत्याचार की सीमा होती है।'

'देखा न चौबेजी, चोर की दाढ़ी में तिनका।'

मैं कह रहा हूँ—'हमारी आँखों के सामने से हट जाओ।'

महेन्द्र टस मस नहीं हुआ। ठाकुर साहब का क्रोध अपनी सीमा पार कर चुका था। उन्होंने अपनी छड़ी उठाई और सड़ाक-सड़ाक छैः छड़ी महेन्द्र की पीठ पर जड़ दी। बेंत के गहरे घाव को महेन्द्र सहन नहीं कर सका और वह चारपाई से लुढ़क कर जमीन पर आ गया। रमेश ने उसे उठाने और दूर ले जाकर होश में ले आने की कोशिश करने लगा। थोड़ा होश आने पर महेन्द्र जोर से कराहा—'आह रे माई! जान गई!'

दूर से लोगों ने टिप्पणी करनी आरंभ की। बड़ा भारी कसाई है। वे जवान भाई का बध करने में भी दुष्ट किसी प्रकार से नहीं हिचक रहा है। भला और लोग इससे क्या आशा कर सकते हैं। अपनी पहली पत्नी को इसी ने जहर दे दिया था। बेचारी घुट-घुट कर मर गई। लेकिन निकट जाकर किसी को कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी।

'रमेश तू बड़ा दुमुहाँ मालूम पड़ता है। छोड़ दे उसे जहन्नुम में जाय। ऐसे भाई से बिना भाई का रहना ही अच्छा है। यदि यह जानता होता कि यह ऐसा नीच होगा तो बचपन में ही पिता जी के डर की चिंता न करते हुए इसका गला घोंट देता। जन्म लेते ही माँ को खा गया, अब घर की प्रतिष्ठा पर ही घात लगाए बैठा है।'

रमेश ठाकुर साहब के क्रोध से परिचित थे। वह उसे उसी स्थान पर लिटा कर अलग हो गया। इसी बीच भगवती को यह समाचार

मिला और वह दौड़ी-दौड़ी ठाकुर साहब के दरवाजे पर आ गई। यद्यपि अभी भगवती सब लोगों के सामने इस प्रकार नहीं होती थी, फिर भी आज उसने लोक-लाज छोड़कर महेन्द्र को गोद में उठा लिया।

भगवती उसे अपने घर ले जाने लगी। इसी बीच रमेश ने आकर कहा—'माँ दूसरों का झगड़ा अपने ऊपर क्यों ले रही है। ठाकुर साहब इससे बहुत नाराज होंगे।'

'जा जा मैं नहीं जानती थी कि तुम हिजड़े हो। तुम और ठाकुर साहब दोनों हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। ओह! तुम्हारे सामने ठाकुर साहब ने इसकी यह हालत कर दी।'—भगवती के चेहरे का क्रोध पूरी तरह उभर आया था।

रमेश सिटपिटाया। ज्योंही महेन्द्र को उठाने के लिए रमेश उस ओर लपका त्योंही भगवती ने पुनः गरज कर कहा—'रमेश, इसको अब छूना मत। मैं किसी प्रकार इसको घर ले जाऊँगी।'

ठाकुर साहब अपने बैठक से ही बोले—'रमेश की माँ रख दो उसे—वहीं पर, वर्ना ठीक न होगा। वह हमारा भाई है। मैं चाहे जो करूँ, तुमसे मतलब।'

'मैं ऐसे कसाई के हाथ में इसे मरने के लिए नहीं छोड़ सकती।'

'अच्छा तो उसे अपने ही यहाँ रखना। हमारे घर में उसके लिए कोई स्थान नहीं है। अपने घर में जब न सपरे तो छावनी पर भेज देना।'

ठाकुर साहब पुनः गुड़गुड़ी पीने में सलग्न हो गए। शेष लोगों को काटो तो खून नहीं। इस घटना के लिए कोई तैयार नहीं था। इसलिए लोग अवाक्-से बैठे हुए थे।

महेन्द्र ने आखें खोल कर पूछा कि मैं कहाँ हूँ तो उसे उत्तर मिला अपने घर में। वह जोर से चिल्ला उठा—'मैं यहाँ नहीं रह सकता, मुझे छोड़ो अब मेरे लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है।'

'अरे महेन्द्र यह मैं हूँ।' भगवती ने स्नेह पूर्वक उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए कहा।

'भगवती का स्वर पहचानते हुए महेन्द्र ने कहा—माँ!'

'हाँ बेटा।'

दोनों की आँखों से झर-झर आँसू गिर रहे थे।



सात

सुबह होते ही नील्ह नित्य की भाँति घड़ा लेकर ज्योंही कुएँ पर पहुँची त्योंही उसकी ओर देखकर चार-पाँच स्त्रियाँ कानाफूसी करती हुई दिखाई पड़ीं। एक ने दूसरी के गले पर चपत लगाकर कहा—'कौन वैसी खूबसूरत हो कि लोग-बाग लट्टू होंगे।' 'अपना-अपना भाग्य होता है बहिन। सब को चहेते नहीं मिलते।' 'नौज मिलें। एक ने हाथ चमकाते हुए कहा—'भगवान करें कोई सतभतरी न हो। यह भी कोई अच्छा काम है ?' 'दूला आते ही राँड़ हो गई थी बिचारी' दूसरी आँखें मटका कर अपना घड़ा सँभालते हुए बोली—'क्या वह कम सुन्दर थी ? यदि वह चाहती तो कहीं भी चली जा सकती थी, पर रह गई एक के नाम पर। एक दिन एक बकरे को सराप दे दिया, वह तीसरे दिन मर गया। यदि नहीं सपरता है तो विवाह कर लो, इधर-उधर छिछियाना अच्छा नहीं होता। सुना मुझ से क्या ?'

एक बात और नहीं सुनी बहन'—तीसरी बड़ी उत्सुकता पूर्वक कह रही थी—'छोटे ठाकुर पर ऐसी मार पड़ी कि उनको मूर्च्छा आ गई।'

'क्यों ? क्या बात हुई है ? किसने मारा ?'—चौथी अत्यंत व्यग्र होकर पूछ रही थी।

'उनके भैया मारेंगे और कौन ? यदि लड़का राह-कुराह जा रहा है तो मारा नही जायगा।'

स्त्रियों ने अपने-अपने घड़े उठाए और घर की राह ली। सीढ़ी पर बैठी हुई नीलू को देखकर एक ने कहा—जरा हट जाना, नीलम रानी।'

'मैं क्या ऐसी अछूत हो गई हूँ, बहन।' नीलू ने मर्माहत होकर कहा।

'तुम्हारा बड़े-बड़ों से साथ है। हम गरीबों को कौन पूछता है? कहीं हमारी भी पीठ-पूजा न होने लगे।'—इठलाती हुई स्त्रियाँ सीढ़ी उतर गईं।

नीलू बड़ी कठिनाई से दो घड़ा पानी निकाल सकी। फिर कुएँ पर बैठकर इतना रोई इतना रोई कि उसका आँचल गीला हो गया। फिर घड़ा उठाया, रस्सी बटोरी और घर का रास्ता लिया। घर पहुँचने पर उसकी माँ ने देखा कि नीलू की आखें सूजी हुई हैं और चेहरा उदास हो गया है। उसने पूछा—बिटिया क्या बात है, तुम बहुत उदास मालूम पड़ रही हो।'

'कुछ नहीं है माँ, उदास तो नहीं हूँ।'

'वाह, तुम्हारी आखें सूजी हुई हैं, गालों पर आँसू की लकीरें बनी हुई हैं, आँचल भींगा हुआ है। फिर भी तुम उदास नहीं हो। क्या बात है? रानी मुझसे बतला दे न।'

नीलू फूट-फूट कर रोने लगी। हिचकियाँ भरते हुए किसी प्रकार उसने कहा—'सुन कर क्या करोगी माँ। मैं मर भी नहीं जाती।

'किसी ने कुछ कहा है बेटी? किसी ने कुछ ताना मारा है?'

'कुएँ पर पड़ोस की स्त्रियाँ पानी लेने आई थीं। वे पता नहीं क्या-क्या कह रही थीं? वे कहतीं थीं महेंन्द्र बाबू को उनके भैया ने मेरे पीछे मारा है।' नीलू फिर रोने लगी।

'रो न बिटिया। यदि तू सच्ची है तो किसी के कुछ कहने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वे सब राँड जैसी अपने हैं वैसी ही दूसरों को जानती हैं। अशरफी को क्या मैं नहीं जानती? आज बड़ी सतवन्ती बनी है। विवाह के पहले ही पेट फुलाए आये थी। दतखोढ़ी धन्नो?— उसके मुँह में आग लगा दूँगी—सात-सात दिन कल्लू के कोठे पर रह जाती थी, आज चली है साफ-पाक बनने। फूला सामने पड़ी कि खफसकर छोड़ दूँगी—'सुपवा बोल्यै तो बोल्यै, चलनियों बोल्यै जेकरे पेटवा में बहत्तर छेद' हाँ आज रात मैंने एक सपना देखा है जो बहुत बुरा था। लगता था जैसे कोई भयानक जानवर तुमको मुँह में दबाकर जंगल की ओर भागा जा रहा था। लेकिन डीह बरइछा की कृपा से सब अच्छा होगा। मैं अभी उनकी पूजा करने जा रही हूँ।'

'जा माँ, मैं तो नहीं जाती। बाबा क्या करेंगे मुझे नहीं मालूम।'

'ना-ना बिटिया, ऐसा नहीं कहा जाता', उसकी माँ रधिया ने कानों पर हाथ रखते हुए कहा, 'तुम्हारी पूजा के कारण ही अब तक आँच नहीं आई, नहीं तो कहाँ ठाकुर साहब और कहाँ हम लोग!'

'मेरा जी अच्छा नहीं है माँ, तू अकेली चली जा।'

'अच्छा बिटिया तू यहीं रह, मैं अभी आई।'

रधिया डीह बरइछा के सामने जाकर जमीन पर लेट गई और कहने लगी—हे बाबा, हमारे ऊपर जो संकट आए उनको तूने अब तक दूर किया। हमारी बिटिया की रक्षा करना, उसके बाप की भी आफत में सहायता करना। तू ही हमारे सब कुछ हो।' फिर बाबा की प्रदक्षिणा की और दीपक जलाया। छत से लटकते हुए घंटे को जोर से बजाया। मंदिर के बाहर निकलने पर उसे रमई मिला। असहाय रधिया ने गीली वाणी में कहा—'बाबा, पाँव लगती हूँ।'

'कल्याण हो।'—रमई ने आशीर्वाद दिया।

'इस जिन्दगी में कल्याण कहाँ, महराज।'

'क्या बात है राधे ?'

'कुछ नहीं महराज।'

'एक बड़ा भयानक काण्ड होने वाला है, राधे !' यह कह कर रमई चुप हो गया।

'क्या है महराज ?'

'भला मैं कैसे बतला सकता हूँ ? पर तुमको असहाय जानकर हमारी आत्मा पिघल उठी और सोचा कि इन बेचारों को सावधान कर देना चाहिए। जो कुछ न हो जाय नीलू की माँ वह थोड़ा है। नीलू नहीं आई है।'

'नहीं। महाराज मैं तुम्हारे पाँव गिरती हूँ। हमारी रक्षा करना।' यह कह कर रधिया उसके पावों पर गिर पड़ी और फूट-फूट कर रोने लगी।

'अच्छा चल घर पर ही बतलाऊँगा। नहीं, नहीं शुकदेव ने उस दिन मुझे गाली दी थी। मैं नहीं जा सकता।'

'नहीं महाराज मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ। वे नहीं बोलेंगे। उनको मालूम भी नहीं होगा मैं आपको घर में बिठला दूँगी।'

रधिया रमई को घर के आँगन में बिठा कर कुएँ से पानी लाने गई। रमई मन ही मन मगन हो उठा। वह सोचने लगा कि यदि इस बार का पाशा नहीं पलटा तो बाजी हमारी है। बाद में ठाकुर साहब के मन की भी हो जायगी। वह नीलू को देखने के लिए, उससे दो-चार बातें करने के लिए व्यग्र हो उठा। इसी बीच नीलू गाय का

दूध लिए घर में घुसी। रमई को आँगन में चारपाई पर बैठे देखकर नील्लू ने चौंककर पूछा—'कौन है रे ?'

'मैं हूँ नील्लू रानी, तुम्हारी माँ के साथ आया हूँ।'—रमई का हृदय धक्-धक् करने लगा।

'इस तरह बेशर्मी की तरह किसी के घर में घुसा जाता है ? यहाँ से निकल जाइए नहीं तो आपकी खैरियत नहीं है—बेहया ! बदतमीज !'

'देखो नील्लू, कहे देता हूँ, गाली न बकना…नहीं तो…'

'रमई !'—नील्लू ने जोर से कहा।

शुकदेव घर में घुस ही रहा था कि रमई का नाम सुना। जल्दी-जल्दी आँगन में आकर रमई की पीठ पर उसने चार डंडे लगाए। घाव तो हल्का ही लगा पर रमई बड़े जोर से घर के बाहर भागा। रास्ते में उसके धक्के से रधिया का घड़ा फूट कर चकनाचूर हो गया।

वह कहती ही रह गई—अरे महराज, अरे महराज—सुनो सुनो। पर रमई सिर पर पैर रखकर भाग रहा था।

उसने पीछे उलट कर भी नहीं देखा। दुर्भाग्य का मारा खेत की मेंड़ से ठोकर खाकर मुँह के बल 'चप'—से गिर पड़ा लेकिन वह तुरत उठकर दौड़ पड़ा जैसे उसके पैरों में पर लगे हों। घर आने पर जब रधिया को समाचार मालूम हुआ तब वह केवल इतना कह सकी—'पता नहीं अभी जिन्दगी में क्या-क्या देखना बदा है।'

आठ

शुकदेव के खेत में मक्का की फसल खूब लहलहा रही थी। मक्का के साँवले पेड़ों को देखकर रधिया और नीलू की खुशी का ठिकाना न था। इस बार तीनों ने मिलकर खेत में अच्छी खाद डाली थी, उसकी जुताई करने में भी किसी तरह की कोर कसर नहीं की थी। खेत की गोड़ाई और निराई में भी उन्होंने जी तोड़ परिश्रम किया था। अपने परिश्रम को फूलता-फलता देख उनका प्रसन्न होना स्वाभाविक था। मक्का में जीरा आ गया था, पर घुई लगने में कुछ देर थी। लेकिन सबका विश्वास था कि खूब मोटी-मोटी बालें लगेंगी। शुकदेव के खेत को देखकर लोगों के दिल पर साँप लोट जाता। शुकदेव तो रात दिन उसी की रखवाली में इस तरह लगा रहता मानो किसी साधना में कोई साधु धुनी रमाए हो। प्रातः से लेकर संध्या तक उसी खेत पर रहता। संध्या को खाना खाने के बाद सोने के लिए खेत में मचान पर चला जाता।

एक दिन आधीरात के लगभग शुकदेव ने कुछ आहट पाकर समझा कि जानवर उसके खेत को चर रहे हैं। उसने 'हुला-हुला' कहकर उन्हें भगाने की चेष्टा की। लेकिन शुकदेव ने देखा कि तीन-चार आदमी उसके मचान की ओर लपके आ रहे हैं। उनके हाथ में भाले थे, जिनके फल रात में चमक रहे थे। उन्होंने कुछ विचित्र आवाज में कहा—'यदि मचान से उतरे और हल्ला किया तो भाले की नोक पर उठा लेंगे।' शुकदेव चारपाई में लुढ़क गया; थोड़ी देर में सारा खेत मैदान हो गया और उसकी सारी हसरतों पर पानी फिर गया।

रधिया को जब यह खबर लगी वह ढाढ मार कर रोने लगी, नीलू की आखों से अविरल अश्रुवर्षा होने लगी और शुकदेव की तो जैसे कमर टूट गई।

अब उनकी जीविका के साधन के रूप में दो गाएँ शेष बची थीं। इनके दूध-घी से उनके खाने-पीने का काम चला जाता था। माँ-बेटी दोनों उनकी देख-रेख में ऐसी जुट गईं कि खेत कटने की बात भूल-सी गई। अब गायों में कुछ दूध अधिक हो गया था और वे पहले की अपेक्षा अधिक स्वस्थ दीखती थीं।

खेत कटे हुए अभी एक महीना भी नहीं बीता था कि दोनों गाएँ बीमार पड़ गईं। अब तो माँ-बेटी के सिर पर मानों आसमान गिर पड़ा। पशुओं के रोगों के विशेषज्ञ गोपी को उन्हें दिखलाया, पर कोई लाभ नहीं हुआ। उनके मुँह से फेन जा रहा था और वे हाथ-पाँव पटक रही थीं। पशुओं के एक दूसरे वैद्य ने बतलाया कि उन्हें विष दे दिया गया है। दो-तीन दिनों के बाद वे मर गईं।

अब उनके जीवन का अंतिम आधार टूट गया। रधिया छाती पीट-पीट कर रो रही थी। नीलू को ऐसा धक्का लगा कि वह पत्थर-सी स्थिर घर की भीत देख रही थी। अब वह क्या करेगी, माँ-बाप को कैसे जिला सकेगी। उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता था। पर नीलू नहीं हारी, नहीं टूटी। घास करके कुछ उपार्जन करने का उसने निश्चय किया। लेकिन रधिया को संतोष नहीं हुआ। वह सुबह उठकर रोज एक घंटा रोती थी तब किसी काम में हाथ बटाती थी। माँ-बेटी दोनों घास करने पर जुट गईं। रधिया घास बेचने ले जाती थी और नीलू घर सँभालती थी।

लेकिन रमई का प्रतिशोध अभी पूरा नहीं हुआ था। उसने देखा कि बार-बार तोड़ने पर भी वे टूट नहीं रहीं हैं इसलिए ठाकुर

साहब से कह कर दारोगा जी को बुलवाया और उनसे मिलकर नया षड्यन्त्र किया।

नीलू के मकान के पास के घर में नकब लगवा दी गई और ठाकुर साहब ने घरके बड़े-बूढ़े दातादीन को डाँटकर नामजद रपट लिखवाने की आज्ञा दी। मारे डर के दातादीन ने नीलू और शुकदेव के नाम रपट कर दी। दूसरे दिन सुबह नीलू और शुकदेव को हवालात में बंद कर दिया गया।

दस बजे प्रातः काल दारोगाजी ने शुकदेव को हवालात से निकलवाया और उससे चोरी के संबंध में पूछताछ आरंभ कर दी—'क्यों बे इस चोरी में और कौन-कौन लोग सम्मिलित थे?'

'मुझे बिलकुल नही पता सरकार, मैं तो महीनों से बीमार पड़ा हूँ।'

'बीमार पड़ा है, साला! ठीक से बतला दो नहीं चमड़ी उधेड़ दूँगा।'

'नहीं सरकार, मुझे कुछ भी नहीं पता है।' शुकदेव ने अत्यंत दीनभाव से गिड़गिड़ाते हुए दारोगा के पाँवों पर सिर रख दिया। दारोगा ने शुकदेव को ऐसा ठोकर मारी कि उसकी नाक से खून बह निकला। एक क्षण के लिए वह विक्षिप्त-सा हो उठा।

'यह बेईमान इस तरह नहीं मानेगा। इसने एक लौंडिया पाल रखी है, इसलिए आस-पास के सारे गुंडे इसके मित्र हैं। लेकिन आज तुम्हारी सारी गुंडई भुलवा देंगे। रज्जाक, लाओ बेंत और साले के चूतड़ पर मारो दस बेंत।'—दारोगा ने एक नजर हवालात की ओर देखा। नीलू लोहे का छड़ थामे इस कसाईखाने की हलाली देख रही थी।

'रज्जाक, अभी नहीं आए।'

रज्जाक बेंत लेकर उपस्थित हो गया। शुकदेव ने घूमकर हावालात की ओर देखा – नीलू की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

दारोगा हावालात के पास खड़ा हो गया और रज्जाक को आज्ञा दी कि कस कस तीन बेंत लगाओ। पहला बेंत लगा भी नहीं था कि नीलू ने घिघिया कर कहा—'दारोगाजी मैं आपसे बहुत-बहुत प्रार्थना करती हूँ, हाथ जोड़ती हूँ, पिताजी को छोड़ दीजिए।' तब तक तीन बेंत लग चुके थे और शुकदेव बेहोश हो चुका था।

'अच्छा रज्जाक तुम जाओ।' दारोगाजी की आँखों में विजय का प्रकाश चमक रहा था। उन्होंने थोड़ा ठहर कर कहा-'देखो नीलू, तुम्हारे कहने से मैंने शुकदेव को दे दिया। ठाकुर साहब का तो कहना था कि……'

'पर पिताजी तो बेहोश हैं दारोगाजी। मुझको उनके पास नहीं जाने दीजिएगा।'

'नहीं, कानून के विरुद्ध है। अभी उसे होश आ जाता है, घबड़ाने की बात नहीं है।'

थोड़ी देर के बाद शुकदेव को होश आया। उसे डाँटते हुए दारोगा ने थाने से बाहर कर दिया।

दोपहर को दारोगा ने नीलू को अपने घर का बना हुआ भोजन भेजा, पर नीलू ने उसे छुआ तक नहीं। जब यह समाचार दारोगा को मिला तो वे स्वयं वहाँ गए और उससे भोजन करने का आग्रह करने लगे, किंतु नीलू ने नाहीं कर दिया।

संध्या को ठाकुर साहब रमई के साथ थाने पर पहुँचे। वहाँ पर थानेदार साहब से घुलघुल कर बातें की। उन्होंने कहा—

'बहुत भाग्यवान हैं दारोगाजी आप।'

'यह सब आप लोगों की कृपा है।'

इसी बीच रमई हावालात के पास पहुँचा और नीलू से बोला—'देखें दारोगाजी के पंजे से कहाँ निकल भागती हो ?' नीलू ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया और सीखचे की ओर पीठ फेर ली।

———

नौ

महेन्द्र चुपचाप अपनी छावनी पर रह रहा था। यद्यपि प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिए उसने एक पाठशाला खोल रखी थी, फिर भी उसका मन वहाँ पर लग नहीं रहा था। अपने भैया के अत्याचारों की कहानियाँ उसके कानों में पड़ती थीं, पर उनके विरुद्ध कुछ करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। गाँव के पढ़े लिखे लोगों का दल भी कुछ ऐसा निर्वीर्य और स्वार्थी हो चला था कि उससे कोई विशेष आशा नहीं की जा सकती थी। फिर भी अकेले उससे जितना हो सकता था गरीबों के हित के लिए करता था।

पहाड़पुर से छावनी लगभग एक मील थी, पर पहाड़पुर का गाँव उसके समीप तक फैला हुआ था। छावनी का मकान तो पहाड़पुर में ही था। अतः उस इलाके की खबरें उसे मिला करती थीं।

जब उसे नीलू के हवालात जाने की खबर लगी तब उससे नहीं रहा गया। वह सीधे शुकदेव के मकान पर पहुँचा। रधिया को आश्वासन देकर वह तुरत थाने की ओर रवाना हो गया।

संयोग से थाने के चौक में दारोगाजी बैठे हुए थे। वहाँ पहुँचकर उसने कहा—'मैं दारोगाजी से मिलना चाहता हूँ।'

'तशरीफ रखिए।' दारोगा जी ने कहा—'कहिए कैसे चले?'

'मेरा नाम महेन्द्र है। एक विशेष कार्य से मैं आपके पास आया हूँ।'

'ठाकुर साहब के छोटे भाई हैं आप?'

'ईश्वर ने कुछ ऐसा ही संबंध बना दिया है। मुझे आप केवल महेन्द्र समझें।'

'ठाकुर साहब के छोटे भाई होने में आपका गौरव ही है महेन्द्र जी।'

'मैं इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ। ऐसे अत्याचारी और नृशंस का भाई होना गौरव का नहीं लज्जा का विषय है।'

'खैर, तो आप कैसे चले?'

'मैं शुकदेव के संबंध में सारी स्थितियों से आपको अवगत कराने आया हूँ।'

'मुझे सब कुछ मालूम है।'

'फिर इन असहायों पर इस तरह घृणित अत्याचार करने में आप क्यों सहयोग दे रहे हैं?'

'मैं कानून से बँधा हूँ।'

'क्या कानून इसलिए बनाया गया है कि उसके सहारे दीनों और अनाथों का गला घोंटा जाय।'

'यह भी होता है।'

'यह भी होता है कि केवल यही होता है। लेकिन दारोगा जी, मैं आप से यह जानना चाहता हूँ कि जब आप सारी सच्ची घटनाओं से परिचित हैं तब इस अनैतिक कार्य में क्यों योग देते हैं?'

'एक बार मैंने आप से कह दिया कि मैं यहाँ पर कानून की रक्षा करने के लिए हूँ। कानून की दृष्टि में जो ठीक है वह नैतिक, उसकी दृष्टि में जो ठीक नहीं है वह अनैतिक।'

'हूँ!' महेन्द्र ने गहरी साँस ली।

'तो क्या आप नीलू की जमानत ले सकते हैं।'

'जमानत कौन पड़ेगा ?'

'मैं स्वयं।'

'जी, नहीं।' इतना कहकर दारोगाजी घर में चले गए और महेन्द्र वहीं टेबुल पर कुहनी टेके हवालात की ओर एकटक देखता रहा। नीलू महेन्द्र को देखकर फूट पड़ी।

महेन्द्र बैठा ही हुआ था कि एक सिपाही ने आकर उससे कहा कि दारोगा जी की आज्ञा है कि आप थाने से बाहर चले जाँय।

'यदि हम न जाँय तो ?'

'तो आपको जाना पड़ेगा, यानी जबरदस्ती जाने के लिए मजबूर होना पड़ेगा।'

'अच्छा कानून के रक्षको मैं चला'—महेन्द्र तेजी से थाने के बाहर हो गया।

आधी रात का गजर हुआ और हवालात का लोहे का फाटक घर-घर बोला। नीलू की आँखों में नींद नहीं थी। उसने घूमकर देखा तो एक सिपाही खड़ा था। नीलू की आत्मा काँप उठी, उसने सोचा कि आज प्रलय की रात है। आज उसके बलिदान को विधाता भी नहीं रोक सकता। ओह भगवान क्या तुम इस अबला की रक्षा नहीं कर सकोगे! द्रौपदी ने ऐसी ही एक भीषण परिस्थिति में तुमको पुकारा था, नाथ! क्या आज हमारे काम नहीं आओगे!

'सुनती हो ?'—सिपाही ने कर्कश आवाज में कहा।

'क्या है ?'—उसकी वाणी में निरीहता और आँखों के कोयों में मूर्तिमती करुणा बोल रही थी।

'तुम्हारे सोने का प्रबंध दूसरी जगह है। वहाँ जाकर चारपाई पर सोओ। उस पर गद्दा लगा है, रंगीन चादर बिछी है और सेमर की

रुई के कोमल तकिए हैं। एक रात तो आनन्द कर लो।' सिपाही हँस रहा था।

'हमारे ऐसे दरिद्र और असहाय लोगों के लिए यही स्थान ठीक है, बाबू।'

'उठ हरामजादी, नखरा करती है। सात मूस खाय के बिलार भइलीं भगतिन।'

'मैं नहीं जाती, चाहे मुझे मार डालो।'

'तुम्हारा यहाँ तक तपाक! बड़े-बड़े ब्राह्मण-क्षत्रियों की बहू-बेटियों को दारोगा जी को अपना सब कुछ देना पड़ता है, तुम किस खेत की मूली हो।'

'आप से प्रार्थना है कि हमें तंग न करें।'

'इस नए राज्य में यह भी नखरा करने लगी है। अरे, दुष्टा इसमें तो और मौज है। दारोगा जी की पहुँच राजधानी तक है। सैयाँ भए कोतवाल''''उठ उठ।'

नील्हू चुप थी।

'चूतर पर चार डंडे पड़ेंगे तब होश ठीक होगा। चली है बड़ी सतवन्ती बनने।'

नील्हू को टस से मस न होते देखकर सिपाही चला गया। पर नील्हू के मन में विचारों के आवर्त बनने-बिगड़ने लगे। वह सोचने लगी कि थानेदार आने ही वाला है। मार डालेगा। यदि उसने जबरदस्ती की तो मैं क्या करूँगी। क्या ठाकुर साहब इससे बुरे थे। जिस सतीत्व की रक्षा करने के लिए मैंने अपना सब कुछ खोया, क्या आज वह भी हाथ से चला जायगा। यदि रमई का कहना मान लिया होता तो यह विपत्ति क्यों पड़ती? लेकिन शरीर का कोई चाहे जो

करले पर मन का कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। हे नाथ, क्या तुम्हारे रहते ही हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायगी !

'क्यों रे बदतमीज, तू नहीं उठेगी'—पीछे से उसकी पीठ पर बेंत का एक सपाका लगा। इसके बाद जूते की एक ठोकर और वह मुँह के बल औंधी गिर पड़ी। उसकी अचेतन अवस्था में ही दारोगा उसे उठा कर उस निर्दिष्ट स्थान पर ले गए जहाँ पर पहले से ही चारपाई लगी हुई थी।

नीलू ने आँखें खोलीं तो अपने को गद्देदार बिछौने पर पाया। पास में बैठे हुए दारोगा जी सिगरेट का कश खींच रहे थे। नीलू को होश में देखकर दारोगा ने धीरे से कहा—'क्यों नीलू, होश में तो हो न ?'

'हाँ'—नीलू ने इतना ही कहा।

'देखो, सवेरे तुमको रिहा कर देंगे। न तो तुम्हारे ऊपर मुकदमा चल पाएगा और न शुकदेव के ऊपर। मैं जानता हूँ कि ठाकुर साहब ने तुम्हारे ऊपर अनेक तरह के अत्याचार किए हैं।'

'क्या तुम तैयार हो ?'

नीलू चुप थी।

'मैं देख लूँगा कि तुम्हारा खेत सुरक्षित रहेगा। यदि तुम कहो तो रमई को मुकदमें में फँसा कर जेल भिजवा दूँ। लेकिन एक बार 'हाँ कह दो।'

नीलू फिर चुप थी।

'तुम्हारे पड़ोस के जो-जो अहीर तुम्हारे खिलाफ हैं उन पर एक सौ सात चला कर उनकी दुर्दशा कर दूँगा।'

पर यदि तुम प्रसन्नतापूर्वक मेरी एक बात मान लो।' नील्ल एक चुप हजार चुप।

'मैं सच कहता हूँ नील्ल! मैंने बहुत सी स्त्रियों को देखा, बड़े-बड़े घराने की, परंतु यह सौन्दर्य, यह यौवन मुझे कहीं भी नहीं दिखाई पड़ा। तुम गूदड़ी में लाल हो। बोलो तुम्हारी क्या इच्छा है?'

नील्ल चुप थी। मानो उसके दाँत बैठ गए हों। दारोगा धीरे से उठा और नील्ल की चारपाई पर बैठ गया। ज्योंही उसने नील्ल का हाथ अपने हाथों में लिया त्योंही पिस्तौल छूटने की आवाज आई। दारोगा जी के घर में कुहराम मच गया। दारोगा जी झट घर की ओर भागे। दारोगा के छोटे लड़के ने खुले हुए बकस से भरा हुआ पिस्तौल निकाल कर अपनी तकिया के नीचे रख लिया था। कहीं से घोड़ा दब जाने के कारण पिस्तौल छूट गया। खैरियत यह हुई कि किसी को चोट नहीं आई।

बाहर निकल दारोगा ने देखा कि उसकी शैय्या खाली थी। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। सिपाहियों को जगाया और उन्हें टार्च लेकर आस-पास में नील्ल की खोज करने के लिए भेज दिया। प्रातः काल तक ढूँढ़ते रहते पर भी नील्ल नहीं मिली।

कुछ दिन चढ़ने पर दारोगा की पत्नी ने उन्हें बुलाया और बहुत प्रेम से पूछा—'तुम्हारी कोई चीज खो गई है?

'सबेरे-सबेरे तुमको यही मजाक सूझा है। हमारी नौकरी पर बीत रही है और इनको हँसी की पड़ी है।'

'नहीं मैं सच कह रही हूँ। क्या तुम्हारा शिकार तुम्हारे हाथ से निकल गया है?'

'हमें, क्या कहती हो?'

'यदि उसे तुमको सौंप दूँ तो उसके साथ फिर अत्याचार नहीं करोगे न !'

दारोगा के चेहरे पर फिर रंग आ गया। हवालात से किसी अभियुक्त का निकल भागना उनके लिए अत्यंत घातक सिद्ध होता।

'अच्छा चलो बेटी, हवालात में मैं तुम्हें स्वयं बंद कर आऊँ।'

दूसरे दिन चालान भेजते समय दारोगा ने सिपाहियों से कहा—'यह बड़ी चकमे-पट्टी वाली है, इससे सावधान रहना।'

———

दस

ठाकुर साहब ने समझा कि अब शिकार हाथ से नहीं जा सकता। उन्होंने भगवान दत्त से शुकदेव और रधिया को तुरंत बुलवाया। चारों ओर से निराश्रित और असहाय शुकदेव अपनी स्त्री सहित ठाकुर साहब के दरवाजे पर पहुँचा। दूर से ही रोता-गिड़गिड़ाता हुआ ठाकुर साहब के पैरों पर गिरता हुआ बोला—'ठाकुर साहब, मेरा कोई सहारा नहीं रह गया। मैं आपकी शरण में आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिए।'

'अब शरण में आने की बात सूझी है। तब तो नीलू के मत से चलता था न ! 'गोसाईं' जी ने कहा है, कैसे कहा है ठीक याद नहीं पड़ता—तियमत··· बिनु नरेश कर देस।'—भगवान दत्त बोले।

'जो कुछ भी आप कहें, मैं करने को तैयार हूँ।'—रधिया गिड़गिड़ाई।

'फिर महेन्द्र बाबू के मत में पड़ोगी ?'

'महेन्द्र बाबू जी ने कुछ नहीं किया है, अपने उनकी कसम है।'

'चुप हरामजादी, तुमको क्या पता ?—भगवान दत्त ने कहा। रधिया चुप हो गई।

'शुकदेव, पहला काम तुमको यह करना पड़ेगा कि खेत से इस्तीफा देना होगा। है मंजूर।'

'हाँ, सरकार। लेकिन अब हमारे जीने का कोई सहारा नहीं है।'

'उसका प्रबंध मैं करूँगा।'

'आप राजा हैं, शुकदेव। इनके कुटुंब में सदा से दीन-दुखियों की सहायता होती आई है। सरकार के राज्य में जितना मुश्की खा गया उतने में लोग धनी बने हुए हैं।' भगवान दत्त ने हाँकना आरंभ किया—'हमारे घर के लिए तो सरकार कल्पवृक्ष थे। अब तक जो मिर्जई मैं पहन रहा हूँ वह उन्हीं की बनवाई हुई है।'

'यदि तुम चाहो तो शुकदेव हमारे यहाँ रहो। दरवाजे पर काम-धाम देखना और खाया-पिया करना। बुढ़िया भी एक घर में पड़ी रहेगी। यही तुम्हारे लिए ठीक पड़ेगा।'

'जैसी आज्ञा हुजूर की।'

'मेरी तो यही आज्ञा है।'

'मंजूर है सरकार। लेकिन मेरी नीलू छूट कर आ जाती हुजूर तो मैं आपका बड़ा उपकार मानता।'

'वह तो चुटकियाँ बजाते हो जायगा। हमारे साथ चलो और मैं खुद उसकी जमानत करूँगा।'

'दोहाई सरकार की। हम प्रजा हैं। राजा हो तो आप जैसा। गलती करने पर बड़े लोग बच्चों को डाँटते हैं और फिर उन्हें प्यार करते हैं।' शुकदेव की आँखों में आँसू आ गए।

ठाकुर साहब ने शुकदेव को साथ में लिया और ठीक समय से कचहरी पहुँच गए। ठाकुर साहब ने शुकदेव को हवालात के पास नीलू से मिलने के लिए भेज दिया। हवालात के सिपाहियों ने कुछ ले-देकर शुकदेव को नीलू से बातचीत करने का अवसर दे दिया। शुकदेव जानता था कि ठाकुर साहब का नाम लेने से नीलू बिगड़ जायगी। इसलिए जानबूझकर उनके नाम का उसने उल्लेख न करने का मन

ही मन निश्चय कर लिया। शुकदेव को देखते ही नीलू ज़ोर से चीख पड़ी-'दद्दा'—उसकी आँखों से आसुओं की धारा बह चली। शुकदेव से भी न रहा गया और वह फूट-फूट कर रोने लगा।

'बिटिया, घबड़ाओ नहीं तुमको अभी जमानत से छुड़ा लेते हैं।'

'दद्दा तुमको जमानतदार कहाँ मिलेगा?'—हिचकियाँ भरती हुई नीलू बोली।

'बेटा। एक बहुत बड़े आदमी आए हैं।'

इतने में अभियुक्तों की पेशी का समय हो गया और शुकदेव ठाकुर साहब के पास लौट गया।

अदालत में पेश होने पर नीलू ने देखा कि उसके दद्दा ठाकुर साहब के साथ खड़े हैं। ठाकुर साहब को देखते ही नीलू का रक्त खौल गया। ठाकुर साहब ने ज्यों ही नीलू की जमानत की अर्जी पेश की त्यों ही वह कड़क कर बोली—'मुझे स्वयं इनकी जमानत मंजूर नहीं है।' अदालत अवाक् हो गई। लोगों ने आश्चर्य से इस युवती को देखा।

मजिस्ट्रेट को कुतूहल हुआ। उसने पूछा—'क्यों?' नीलू की आँखों से झर-झर आँसू झड़ने लगे। थोड़ी देर में वह गीले कंठ से बोली—'जिसके कारण मैं आजकी स्थिति में पहुँची हूँ, उसी अत्याचारी की जमानत स्वीकार कर मैं अपना यह लोक और परलोक दोनों बिगाड़ूं।'

शुकदेव ने उसके निकट जाकर कहा—नहीं बेटा ऐसे नहीं कहा जाता।

'दद्दा'—नीलू चीख उठी—'ऐसे स्वार्थी, नीच और पापी का मुँह देखना मेरे लिए पाप है। हट जाओ यहाँ से।' इस देहाती स्त्री का यह विद्रोह एक अघटित घटना-सा प्रतीत होने लगा।

'क्या अत्याचार किया है इसने।'—मजिस्ट्रेट से पुनः नहीं रहा गया।

'जिस आदमी ने हमारी लहलहाती खेती कटवाई, गायों को जहर दिलवा दिया, दारोगा से मेरे दद्दा की चमड़ी उधेड़वाई, मेरी प्रतिष्ठा लूटने के लिए तरह-तरह के दाँव-पेच लगाए, उस आदमी की जमानत मंजूर करने के पहले ही मैं मर जाना अच्छा समझूँगी। मुझे जेल में ही रहने दें हुजूर, मैं किसी की जमानत नहीं चाहती। बाहर की अपेक्षा मैं जेल में अधिक सुरक्षित हूँ।'

मजिस्ट्रेट ने ठाकुर साहब की ओर देखा। उन्होंने उलटे पाँव घर का रास्ता लिया। शुकदेव निर्जीवसा ठाकुर साहब के पीछे-पीछे चला जा रहा था।

थाने से लौट आने पर महेन्द्र धम्-से एक झिलँगा चारपाई पर गिर पड़ा। उसका चेहरा रूई-सा सफेद हो गया मानो किसी ने उसके रक्त को चूस लिया हो। शरीर तनिक भी जुंबिश नहीं कर रहा था, जैसे वह केवल मांस-पिंड का लोथड़ा भर है। दाहिने हाथ को बार-बार बालों पर ले जाकर उन्हें जोर से पीछे को ढकेलता, पर बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी।

वह सोच रहा था कि अत्याचार का कोई एक स्थान नहीं है। वह आरंभ से लेकर अंत तक है, पैर से लेकर चोटी तक है। यदि आरंभ में उसे समाप्त किया जाता है तो बीच में पनप उठता है और यदि बीच में समाप्त किया जाता है तो अंत में पुनः जोर पकड़ता है। इसलिए यदि उसे समाप्त करना है तो आदि से अंत तक करना होगा।

फिर उसके सामने दो चेहरे घूम गए—नीलू और दारोगा। एक ओर सद्यः प्रफुल्ल कमल कोरक दूसरी ओर काला कलूटा पहाड़ सा दिङ्नाग दारोगा, एक ओर कमल की कोमल पंखुरियाँ दूसरी ओर कोल्हू की जाट, एक ओर पूर्णिमा का शुभ्र चाँद तो दूसरी ओर राहु के भयानक जबड़े, एक ओर शृंगार तो दूसरी ओर वीभत्स, एक ओर सतोगुण तो दूसरी ओर तमोगुण—भयंकर वैषम्य! उसका सिर भन्ना गया।

तो क्या हार मानकर बैठ जाना चाहिए, अत्याचारों के सामने सिर झुका देना चाहिए? नहीं ऐसा नहीं हो सकता अपने देश में अब अपना राज्य है। कोई तो सुनेगा, मेरी आवाज किसी के कान के परदे से तो टकराएगी। वह उठ बैठा। नगर जाकर इस सबंध में एम्० एल० ए० महोदय की सहायता लेने का विचार किया। वहाँ जाने के लिए उसने सोचा कि शुकदेव या रधिया को साथ ले लेना अच्छा होगा।

वह तेजी से शुकदेव के घर की ओर चल पड़ा। निकट पहुँचने पर देखा कि उसकी मंडई में दो सियार लड़ रहे थे, जैसे उन्हें दुनिया का डर ही न हो। घर के दरवाजे पर दो नेवले निर्भ्रान्त भाव से लेफ्ट-राइट करते हुए पहरा दे रहे थे। कभी-कभी आधा शरीर ऊपर करते हुए वे सैल्यूट भी कर लेते थे। महेन्द्र के पहुँचते ही नेवले तो बिल में घुस गए लेकिन सियार थोड़ी देर तक मंडई को कुरुक्षेत्र समझ कर डटे रहे। महेन्द्र ने देखा कि ये सियार भी उसकी अकर्मण्यता की हँसी उड़ा रहे थे। उसके मंडई में प्रवेश करते ही सियारों का युद्ध बन्द होगया और वे रफू चक्कर हो गए। लेकिन महेन्द्र के मस्तिक में चलने वाले युद्ध की गति और तेज हो गई।

शुकदेव के घर के चारों ओर एक अजीब सूनापन छाया हुआ था। आकाश की बरसती हुई कालिमा और पुर्वा हवा ने सूनेपन को और भी भयानक बना दिया था। घर के दरवाजे पर एक खोखला और निर्जीव ताला पड़ा हुआ था, जो पुर्वा हवा से हिल हिलकर सिकड़ी से टकरा उठता था।

महेन्द्र को इस सूनेपन पर आश्चर्य हो रहा था। शुकदेव थाने से लौट आया, लेकिन घर में नहीं है। रधिया का भी कहीं पता नहीं। वे गए तो कहाँ गए? वे फिर थाने पर तो नहीं गए! वहाँ नहीं जा सकते। थानेदार उन्हें थाने में घुसने नहीं देगा। कहीं अत्याचारों से ऊब कर भाग तो नहीं गए अथवा गोमती की उफनती हुई जलधारा में"""। महेन्द्र की विचारधारा को जैसे ब्रेक लग गया हो। इतने में महेन्द्र की दृष्टि एक सोलह-सत्रह साल के लड़के पर पड़ी। उन्होंने उसे बुलाकर शुकदेव और रधिया के संबंध में पूछा। लड़के का उत्तर पाकर कि वे ठाकुर साहब के घर गए हैं और वहीं रह जायँगे महेन्द्र को गहरी ठेस लगी। उसने समझा कि यह दूसरी पराजय है। वह अनास्थावान हो उठा। सत्, न्याय, समता आदि से उसका विश्वास डिग गया। उसने सोचा कि हमारे देश में अत्याचार, अनैतिकता, बेईमानी आदि से बुने गए मकड़ी के जाले से किसी भी भले आदमी का बच निकलना बहुत ही कठिन है। स्वराज्य के बाद देश के शरीर में अनैतिकता का जो जहरबाद हुआ है उसे ठीक करने के लिए जितने पैने नश्तर की आवश्यकता थी उतना पैना नश्तर प्राप्त नहीं हुआ। इस भथुरे नश्तर के प्रयोग से फोड़े का जहर समस्त शरीर में फैलता जा रहा है। और एक दिन"""।

दूसरे दिन पहली गाड़ी पकड़ने की तत्परता में वह स्टेशन कुछ जल्दी पहुँच गया। यहाँ उसने देखा कि उसी गाड़ी से नीलू की

चालान जा रही है। दोनों ने एक दूसरे को देखा। नीलू की आँखों से आँसू की लड़ियाँ चू पड़ीं। ऐसा लगता था मानो दो लघु-लघु जलद खंड अनंत में निरुद्देश्य घूमते-घूमते किसी शीतल वातावरण से टकराकर सहसा बरस पड़े हों। लौह शृंखला में जकड़े हुए हाथ आँसू पोंछने में भी असमर्थ थे। आँसू की बूँदें गालों पर रेखाएँ बनाती हुई अंचल से मुँह छिपाकर खो जाती थीं। महेन्द्र को जैसे बिजली का तार छू गया, वह मारे पीड़ा के छटपटा उठा।

नीलू के आँसुओं को देखते हुए एक सिपाही ने दूसरे से कहा--'क्यों बशीर बेचारी के आँसू क्यों नही पोंछ देते ? बड़ा सवाब होगा।'

'मैं इतना खुशकिस्मत कहाँ हूँ, दोस्त।'

महेन्द्र को जैसे सैकड़ों बिच्छुओं ने एक साथ ही डंक मार दिया हो। वह सिपाहियों के पास आकर बोला—'क्यों जी तुम लोगों के घर माँ-बहनें नहीं हैं ?'

'आपसे क्या मतलब साहब ?'—एक सिपाही ने उत्तर दिया।

'मुझसे इतना ही मतलब है कि अभियुक्त भी इंसान है और मैं भी इंसान हूँ।'

'और हम लोग ?'—सिपाही बोला।

'पशु हो, कुत्ते हो।'—भावावेश में महेन्द्र कह गया।

'देखिए, यदि आप हमारे कार्य में बाधा देंगे तो आपकी भी यही गति होगी।'

'विदेशी राज्य गया लेकिन तुम लोगों की मनोवृत्ति नहीं बदली।' सिपाही महेन्द्र की बात पर हँसे और बोले—'आपके भोलेपन पर हमें तरस आ रहा है।'

'मैं कहता हूँ मैं कहता हूँ यदि अभियुक्त के साथ बुरा बर्ताव होगा तो ठीक नहीं है।'—महेन्द्र की आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ छूट रही थीं।

महेन्द्र और सिपाहियों का वार्तालाप सुनकर आसपास के लोग जुट आये। सभी लोग महेन्द्र की बातों का समर्थन करने लगे। सिपाही सिटपिटाए। भीड़ में से एक ने कहा—ये सिपाही साले बड़े बदमाश होते हैं। दूसरा धीरे से फुसफुसा उठा—है भी तो वह गजब की सुन्दर, बेचारों से रहा नहीं जाता।

इतने में गाड़ी आई और लोग उसकी ओर लपके।

गाड़ी से उतर कर महेन्द्र सीधे रामचरण एम्० एल० ए० के बँगले पर पहुँचा। वहाँ बहुत से लोग एकत्र थे। किसी के लड़के को तहसीलदार बनवाना था, तो किसी के भाई को सेक्रेटेरियेट में नौकरी दिलवानी थी। कोई तबादले के चक्कर में पड़ा हुआ था कोई ट्यूब वेल का ठेका लेने का जाल बुन रहा था। दो-चार प्रेस के प्रोपराइटर भी रामचरण का रुख देखकर सरकार की ओर से छपनेवाली रीडरों को छापने की बात चलानेवाले थे। महेन्द्र भी उस भीड़ में सम्मिलित हो गया और अपनी बात कहने के लिए एकान्त प्राप्त करने के अवसर में चुपचाप बैठा रहा। पर एक जाता था तो दो बैठक में विराजमान हो जाते थे। एम्० एल० ए० महोदय ऐसे बैठे हुए थे मानो चाटुकार दरबारियों से घिरा हुआ कोई भारतीय रईस या राजा। रामचरण हाँ-हूँ कहते हुए अपने वैभव पर मन ही मन मुग्ध हो रहे थे।

कचहरी का समय हो चला था, लेकिन महेन्द्र को बात करने का अवसर नहीं मिला। रामचरण की दृष्टि महेन्द्र पर पड़ी और वे बोले—

'आपकी मैं क्या सेवा कर सकता हूँ ।'

'मैं पहाड़पुर से आ रहा हूँ ।' महेन्द्र का इतना कहना था कि रामचरण बोल उठे—'जहाँ के ठाकुर साहब हैं ।'

'जी, हाँ ।'

'अच्छा, अच्छा, कहिए ।'

'वहाँ के निवासियों पर ठाकुर साहब तथा उस थाने के दारोगा अत्याचार पर अत्याचार किए जा रहे हैं, पर कहीं पर उनकी सहायता करने वाला कोई नहीं दिखाई पड़ता । मैं लाचार होकर आपके पास आया हूँ ।'

'इसमें आप मेरी किस तरह की सहायता चाहते हैं ?'

'आप उस हलके का दौरा करके वहाँ की स्थिति अपनी आँखों देख सकते हैं ।'

'इस समय तो मुझे फुरसत नहीं है । परसों एक सब-कमिटी में सम्मिलित होने के लिए मुझे लखनऊ जाना है ।'

इस पर महेन्द्र ने अत्याचार की सारी कहानी विस्तारपूर्वक कहनी आरंभ की । रामचरण ने बीच में रोक कर कहा—'संक्षेप में ही कहें तो बड़ी कृपा हो ।'

संक्षेप में सब कुछ सुन लेने के पश्चात रामचरण ने कहा—'ठाकुर साहब तो उस इलाके के गिने-चुने रईसों में से हैं ।'

'इसीलिए अब भी अत्याचार करने से बाज नहीं आते ।'

'और दारोगा जी के संबंध में मैं कुछ नहीं जानता ।'

'मेरी इस लंबी कहानी से भी आपको कुछ पता नहीं लगा ।'

'लगा, किंतु पता नहीं वास्तविकता क्या है । यह तो चित्र का एक ही पहलू है ।'

'इसीलिए मैंने आपसे निवेदन किया है कि अपनी आँखों से आप सब कुछ देख लें और कानों से सुन लें।'

'मैं आप से एक बात और अर्ज करना चाहूँगा कि आप लोग अपने मामले अपने आप तय कर लें तो अधिक अच्छा हो। हर एक काम में यदि हम लोगों को हाथ डालना हुआ तो फिर राजनीतिक जागर्ति का अर्थ क्या हुआ? नई परिस्थितियों से सरकार ने जो बुनियादी तबदीली की है उसका माने क्या हुआ?'

'यही पर सरकार भ्रम में है। गावों के नाम पर पैसा खूब लुटाया जा रहा है, पर यह नहीं देखा जाता है कि गाँव वालों के पल्ले क्या पड़ता है? जमीन्दारी तोड़ कर सरकार ने यह समझ लिया है कि बड़ा भारी मैदान मार लिया है। जन्मींदारी तो टूटी पर उसका जहर नहीं गया।'

'लेकिन भई ठाकुर साहब के विरुद्ध मैं कुछ करने में असमर्थ हूँ, क्योंकि मेरा विश्वास है कि वे नायाब दर्जे के रईस हैं।'

'तो आप रईसों और नायाब दर्जे के लोगों के आदमी हैं, प्रभावशालियों के सच्चे शुभचिंतक हैं। भूखे, नंगे और निराश्रित लोगों से आपको कुछ लेना-देना नहीं है।'

'मैंने ऐसा कब कहा?'

'आपने जो कहा उसका अर्थ वही होता है।'

'यदि आप थोड़ा व्यावहारिक ढंग से सोंचे तो इतने नाराज न हों।' ५७ का निर्वाचन सिर पर है और हमारी सरकार को इसका पूरा ध्यान रखना है।'

'तब आप यह कहिए कि जनता की सुख-शांति की अपेक्षा आप अपनी सीट की सुरक्षा में अधिक दिलचस्पी रखते हैं, क्यों? मुझे ऐसे लोगों से सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए।'

महेन्द्र तेजी से बाहर निकल गया। रामचरण हत तेज-से फाइल में सिर गड़ाए रहे।

कचहरी पहुँच कर महेन्द्र ने बड़ी मुश्किल से नीलू को जमानत पर रिहा होने के लिए राजी किया। नीलू को लेकर वह अपने घर लौट आया। तब से नीलू महेन्द्र की छावनी ही पर रहने लगी।

———

ग्यारह

गाँव-पंचायत का चुनाव निकट था। ठाकुर साहब और महेन्द्र दोनों ने प्रधान का परचा खरीदा। दोनों ओर से चुनाव की तैयारियाँ होने लगीं। ठाकुर साहब को अपने आतंक का भरोसा था तो महेन्द्र को अपनी सेवाओं का।

एक ओर ठाकुर साहब के पैरवीकार गाँव-सदस्यों से ठाकुर साहब के लिए अनुनय-विनय करते थे तो दूसरी ओर उनके लठैत लोगों को धमकी भी देते थे। लेकिन ठाकुर साहब अपनी हेकड़ी में ऐंठे हुए दरवाजे पर ही गुड़गुड़ी पीते रहते थे। महेन्द्र भी जगह-जगह सभाएँ करके अपनी योजनाओं को लोगों के सम्मुख उपस्थित करता था। उसके लिए पैरवी करने वाले प्रौढ़ पाठशाला के कुछ अध्यापक थे और कुछ कालेज और विश्वविद्यालय के छात्र।

सरजू सिंह ठाकुरों को जातीयता के नाम पर संघटित कह रहे थे और भगवान दत्त और रमई ब्राह्मणों के संगठन में लगे हुए थे। वे कहते थे कि जमीन्दारी यों ही टूट गई है और यदि महेन्द्र प्रधान हुए तो ब्राह्मण-क्षत्रियों का दबदबा सदा के लिए चला जायगा। महेन्द्र तो चमारों से गया-बीता है?

अहीरों की संख्या भी गाँव में काफी थी। यह निश्चित था कि अहीर जिसके पक्ष में वोट देंगे वे ही विजयी होंगे। अहीरों को मिलाने के लिए नीलू को लेकर महेन्द्र के संबंध में बहुत सी बातें उड़ाई गईं। उनसे कहा गया कि अहीरों के रहते नीलू को महेन्द्र अपने घर में रख ले, इससे अधिक शर्मनाक बात अहीरों के लिए और क्या हो सकती

है। अहीरों का भी माथा फिर गया। ऐसा मालूम पड़ा कि विजय-लक्ष्मी अपना जयमाल ठाकुर साहब के गले में ही डालेगी। चमारों का वर्ग ठाकुर साहब के आतंक से सिर नहीं उठा सकता था।

अहीरों को अपने पक्ष में मिलाने के लिए ठाकुर साहब ने नया हथकंडा निकाला। शुकदेव और रधिया को भी अपने पक्ष में प्रचार करने के लिए भेज दिया। वे दोनों रात भर आपस में फुस-फुस करते रहे पर सबेरे लाचार होकर वे अहीरों की बस्ती में गए। अहीरों के चौधरी ने इनकी बात सुनी और ठाकुर साहब के पक्ष में मत देने का निश्चय किया। पर चौधरी का लड़का जो गाँव के ही इंटर कालेज में पढ़ता था बिगड़ कर बोल उठा—'शुकदेव दादा, मैं तो आप से बहुत छोटा हूँ। लेकिन जितना मैं पहले आप लोगों का आदर करता था उतनी ही आज घृणा करता हूँ। एक तो अपना सर्वनाश करने वाले अत्याचारी के अन्न से आप अपना पालन-पोषण कर रहे हैं दूसरे उसके पक्ष में मत देने के लिए प्रचार भी। धिक्कार है आपको। क्या गोमती का जल सूख गया है?'

शुकदेव को काटो तो खून नहीं।

एक दूसरे स्थान पर जाकर शुकदेव ने मंगली से ज्यों ही ठाकुर साहब के पक्ष में वोट देने के लिए कहा त्योंही कुछ छोटे छोटे लड़के चिल्ला उठे—ठाकुर पर पाप की छाप है। ठाकुर को वोट देना पाप है।

शुकदेव ने देखा इन छोटे-छोटे लड़कों पर पता नहीं कौन सा भूत सवार है। वे छोटी-छोटी जमातों में बँटे हुए थे और गाँव की प्रत्येक गली में नारा लगाते जाते थे—

'ठाकुर पर पाप की छाप है।
ठाकुर को वोट देना पाप है।'

थोड़ी देर बाद मंगली की बहू बाहर निकली और हाथ चमका कर कहा—'बाबा तुम्हारी मति मारी गई है। जिसने इनका खेत कटवाया, गायों को जहर दिलवाया, लड़की को जेल भिजवाया उसी का अन्न खाते हैं। अन्न खाकर चुपचाप बैठे भी नहीं रहते उसकी शरियत करने चले हैं। कहीं डूब नहीं मरते।'

अब शुकदेव की हिम्मत नहीं हुई कि फिर किसी से कुछ कहता। रधिया सहित वह चुपचाप ठाकुर साहब के घर लौट आया।

आज शुकदेव और रधिया दोनों ने भोजन नहीं किया। ठाकुर साहब के पूछने पर उन्होंने कहला दिया कि तबियत ठीक नहीं है। आज शुकदेव के रोम-रोम में जो भयंकर पीड़ा उठ रही थी उसके सामने दारोगा जी के बेंतों की मार कुछ भी नहीं थी। खेत के कट जाने पर उसे जिस क्लेश का अनुभव हुआ था वह आज की आत्म-ग्लानि के पासंग में भी नहीं ठहर सकता। गायों के मर जाने पर भी असहायता का जो भयंकर रूप उसके सामने खड़ा हुआ वह जितना कष्टद प्रतीत हो रहा था वह आज की गहन पीड़ा के सामने कुछ नहीं था।

सुबह होते ही दोनों नदी की ओर चल पड़े। ठाकुर साहब के पूछने पर कह दिया कि डीह के दर्शन के बाद लौट आवेंगे। पर आज तो वे सचमुच उफनती हुई नदी की गोद में प्रायश्चित करने के लिए जा रहे थे। ज्योंही बाबा के धाम के पास मंदिर के निकट वे पहुँचे त्यों ही शुकदेव ने आँखों में आँसू भर कर कहा—'बाबा, तूने दगा दी, मेरा सब कुछ चौपट हो गया।'

'ना-ना ऐसा नहीं कहा जाता।' रधिया मंदिर के सामने मत्था टेकते हुए बोली 'मैं तो जा रही हूँ बाबा, नीलू की रक्षा करना। वह

तुम्हारी धरोहर है।' रधिया ने देखा शुकदेव अमरूद के बाग में खड़े-खड़े उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

उस बाग में खड़े होकर दोनों ने ऐसे स्थान की खोज करनी आरंभ की जहाँ से फिर उन्हें लौटना न पड़े। कुछ देर बाद शुकदेव बोला—दिन में कूदना ठीक नहीं है। इसके लिए रात का समय ही ठीक होता है। चलो तब तक चुनाव ही क्यों न देख लिया जाय।'

चुनाव में दोनों दत

को अपनी विजय में पूर

ठाकुर साहब के

वोट गिने जा रहे थे।

ठाकुर साहब के वोट स

करने पर वोटों की गण

रधिया भी पहुँच चुके

दिए। लोगों ने देख

चली आ रही थी। उ

है। यह रमेश की माँ

साहब हार गए। उन

और स्फुट स्वर में कह

महेन्द्र भगवती के

छाती से चिपकाकर रे

के साथ छावनी पर च

[redacted]

बारह

चाँदनी की हल्की चादर ताने हुए संसार अभी सुख की नींद सो रहा था कि महेन्द्र उठ बैठा, सुबह की ताजी हवा उसके शरीर में पुलक और प्रसन्नता भर रही थी, पक्षियों का कलरव संगीत की मीठी तान बनकर उसके हृदय में एक मीठा दर्द पैदा कर रहा था। महेन्द्र इस मीठी कसक की छोर पकड़ने की कोशिश में लगा ही हुआ था कि चाँदनी की चादर उड़-सी गई और चारों ओर अँधेरे की एक मैली पर्त फैल गई।

महेन्द्र ने पास में स्थित एक दूसरे घर की ओर देखा—अपनी उनीदी आँखों में सतरंगे स्वप्न छिपाये नीलू चली आ रही थी। वह अपनी अधखुली बाहों से अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों को ठीक करने में उलझी हुई थी। इस उलझन ने उसे इतनी मोहक भंगिमाओं से भर दिया था कि उसके व्यक्तित्व में नया आकर्षण दिखाई देने लगा। नीलू ने भी महेन्द्र को देखा पृष्ठ, ग्रीवा और बाहों पर फैले हुए कुंचित घन केशों की पृष्ठभूमि में लज्जारुण कपोल प्रातःकालीन पीताभ छितिज-से दमक उठे।

'कौन ? नीलम।'

'नहीं नीलू हूँ मैं।'—नीलू झेंप गई। महेन्द्र को हँसी आ गई।

'मुह धोने के लिए एक लोटा जल ला सकती हो।'

'यह सम्मान हमारे लिए बहुत मँहगा है महेन्द्र बाबू।'

नीलू एक लोटा जल लिए हुए लौट आई। महेन्द्र जल लेने के लिए उठा कि अकस्मात् नीलू का पैर ऊबड़-खाबड़ जमीन पर पड़

गया और वह लड़खड़ा कर महेन्द्र से टकरा गई। आज यह पहला ही अवसर था कि यों भरे हुए उद्वेलपूर्ण यौवन अनजान में ही एक दूसरे से टकरा गए। उनके चारों ओर अद्भुत मिठास बिखर पड़ी—उनकी नसों में विद्युत-तरंगें दौड़ने लगीं। महेन्द्र का संयम टूट गया और उसने एक क्षण के लिए नीलू को अपने आलिंगन-पाश में बाँध लिया। दो क्षणों के लिए जैसे वे मदिरा के नशे में डूब गए।

'प्रकृत रूप में तुम और भी सुन्दर मालूम पड़ती हो नीलू।' नीलू अचकचा गई और उसका चेहरा विवर्ण हो गया, वह झट बोली—'वह माँ आ रही है।'

महेन्द्र ने देखा कहीं कोई नहीं था। नीलू हँस रही थी। उसने कहा—

'यह अच्छा काम नहीं है, महेन्द्र बाबू।'

'यह बहुत बुरा है, नीलू !'

फिर दोनों हँस पड़े।

महेन्द्र का तन मन एक विचित्र उत्साह और पुलक से भर गया। उसके मन में शिथिलता और द्वन्द्व का जो कुहासा छाया हुआ था वह क्षण भर की स्पर्शजन्य उष्णता से मिट गया। वह प्रसन्न और स्वस्थ भाव से भूमि-प्रबंधक समिति की बैठक में चल पड़ा।

रास्ते भर उसके मस्तिष्क में विचारों की लहरें उठने लगीं। विद्यार्थी जीवन के संस्कारों की ओर उसका ध्यान गया। कबीर, तुलसी, भर्तृहरि आदि को पढ़ने के बाद स्त्री जाति के प्रति उसने कितनी जघन्य कल्पना की थी। आज वे समस्त संस्कार मिट गए। वह रास्ते भर इतना भावाकुल था कि प्रसाद और पंत की पंक्तियाँ गुनगुनाता जा रहा था—'नारी तुम केवल श्रद्धा हो।' 'यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर तो वह नारी उर के भीतर।'

शा ने गलत लिखा है—बिलकुल गलत। उसकी रोमांस-विरोधी धारणाओं के मूल में उसका अत्युक्तिपूर्ण बुद्धिवाद और सनक काम कर रही थी। रोमांस स्वास्थ्यवर्धक तत्त्व है अस्वास्थ्यकर नहीं। रोमांस के कारण हम अपने भीतर का सर्वोत्तम देने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध दार्शनिक रसेल के विचार अपेक्षाकृत अधिक अच्छे हैं। बुद्धिवाद हमें हृदयहीन, अमानवीय और जड़ बना देगा।

वह अपने विचारों में इतना व्यस्त था कि गाँव की चौपाल कब आ गई इसका उसे पता ही नहीं चला। चौपाल से भी वह आगे बढ़ गया होता यदि जोखन ने आकर नमस्कार न किया होता। महेन्द्र के विचार तंतु टूट गए और उसने जोखन से पूछा—'क्या सब लोग आ गए।'

'जी हाँ, घूरे, मकबूल, दत्तात्रेय, सोमल और गनेस—सभी मौजूद हैं।'

'और लेखपाल!'

'वह आ रहे हैं।'—कुछ दूर पर बस्ता लिए आते हुए लेखपाल की ओर जोखन ने उँगली दिखाई।

लेखपाल ने सभापति की आज्ञा से उस सूची को पढ़ा जिसमें गाँव समाज की सम्पत्ति दर्ज की गई थी।

'यदि कुछ छूट गया हो तो पंच लोग बतलावें।'—महेन्द्र ने पंचों पर दृष्टि डालते हुए कहा।

'हाँ, हाँ, छूट गया है', सोमल बोला, 'ठाकुर साहब ने ४ बीघा-बंजर तोड़ कर खेत में मिला लिया है, दो पेड़ शीशम काट लिए हैं, तालाब की मछलियाँ मरवा ली हैं। वे अब भी कहते हैं कि जमींदारी टूट जाने से क्या हुआ। कानून बनाने से क्या शेर शिकार करना छोड़ देगा?'

'भई, जो बात बीत गई उसे छोड़िए।'—दत्तात्रेय ने कहा।

'वाह साहब यह नहीं हो सकता। अत्याचारियों को तो ऐसा ठीक करना चाहिए कि उनकी हेकड़ी भूल जाय।'

'प्राप्त भूमि के लिए कुछ दरखास्तें भी आई हैं।'—प्रधान ने पूछा।'

'हाँ, झिलमिट मल्लाह, रेंगई पाठक और शुकदेव अहीर ने दरख्वास्तें दी हैं।'—लेखपाल ने दरख्वास्तों को प्रधान के सम्मुख उपस्थित करते हुए कहा।

इन तीन नामों में से झिलमिट मल्लाह और रेंगई पाठक के नाम पर जोखन ने आपत्ति उठाई। उसका कहना था कि झिलमिट का काम मछली मारना है, उसने भूमि पर काम नहीं किया है। रेंगई पाठक के पास पहले ही से जमीन है। शुकदेव के पास जमीन नहीं है। इसलिए इसकी व्यवस्था उसी के नाम कर देनी चाहिए।

शुकदेव को जब यह मालूम हुआ कि ठाकुर साहब से जमीन निकाल कर उसके नाम बन्दोबस्त हुआ है तब वह काँप उठा। महेन्द्र के प्रधान हो जाने पर भी ठाकुर साहब के नाम से लोग भयभीत हो जाते थे। रधिया के तो पाँव फूल गए, वह बोली—'बाबू साहब जानबूझ कर हम लोगों को मगर के मुँह में क्यों डाल रहे हैं, वह इस बार हम तीनों को समूचा निगल जायगा। बड़ा जहरीला साँप है।'

'लेकिन उसके विष के दाँत तोड़ दिए गए हैं।'

'फिर भी उसकी फुफकार ही हम लोगों को डराने के लिए काफी होगी।'

'तब तो गाँव-समाज का काम ही नहीं चलेगा। तुम लोगों को

समाज को बदलने के लिए पहले अपने को बदलना होगा। यदि तुम में दृढ़ता और बल है तो कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।'

शुकदेव को बेतों की मार याद हो गई। वह एक बार पुनः सिहर उठा। लेकिन महेन्द्र के बार-बार समझाने पर उसकी कुछ हिम्मत बँधी। लेकिन रधिया ने गिड़गिड़ा कर कहा—'यदि हमारी नीलू पर कोई नई विपत्ति आई तो हम कहीं के नहीं रहेंगे, बाबू साहब।'

'इसकी जिम्मेवारी हमारी।'

———

तेरह

शुकदेव की जिन्दगी ने अँगड़ाई ली, उसके भीतर नई शक्ति का संचार हो रहा था। रधिया को भी नीलू ने समझा-बुझाकर हिम्मत बँधाई। शुकदेव और रधिया दोनों को ऐसा लगता था कि पिछले संघर्ष नए जीवन की सीढ़ियाँ भर थे। नया जीवन अब आरंभ होगा जिसमें रस होगा, मुस्कराहट होगी, स्फूर्ति की छोटी-बड़ी लहरें उठेंगी।

पर इस जिन्दगी के आरंभ होने के पूर्व रधिया सत्यनारायण की कथा सुनकर एक छोटा-मोटा भोज भी देना चाहती थी। इस पक्ष में न तो नीलू थी और न शुकदेव। लेकिन रधिया कहने लगी—'अब कोई काम करने के पहले भगवान की कथा जरूर सुनूँगी। उनकी कृपा से ही हमारा कल्याण हुआ है नहीं तो उस बाघ के मुख से हमें कौन बचाता ?'

'इस संबंध में महेन्द्र बाबू की राय क्यों न ले ली जाय ?'—नीलू ने अपनी माँ से कहा।

'न न न, ऐसा न करना। महेन्द्र बाबू यह सब मानते ही नहीं। डीह बरइछा को खसी माना गया था, उसे उन्होंने कटने नहीं दिया। उन्हीं की बात से नीलू के बाप को बेतों की मार सहनी पड़ी और बिटिया को जेल जाना पड़ा। जो काम आज तक हमारे खानदान में नहीं हुआ वह करना पड़ा। देवता के कोप करने पर कोई सहायता नहीं पहुँचाता। सोमल जो पंच बना बैठा है, उसकी करनी सब लोग जानते हैं। मलिनियाँ पर भगवती आई हुई थीं, उसने उनको

अनाप-सनाप कहा और उसी रात भगवती उसके लड़के को दवा बैठीं। महेन्द्र बाबू की बात सुनते-सुनते नीलू का भी दिमाग खराब हो गया है। सब संकट पार होने पर मैंने सत्यनारायण की कथा सुनने की मनौती मानी है। इससे मैं मुकर नहीं सकती।'

'लेकिन तुम्हारे पास पैसा कहाँ है माँ !'

रधिया ने अपने पैरों के कड़ों की ओर संकेत करते हुए कहा कि इस काम के लिए यह बहुत होगा।

'तुम क्या करो, औरत की जाति ही नासमझ होती है। जिस बात का हठ पकड़ेंगी उसे छोड़ने से रहीं। बात-बात में लड़ाई-झगड़ा कपर-फुड़ौवल, गाली-गलौज, शक-शंका। देवी भगवती तो इनके सिर पर चढ़ी रहती हैं। गनीमत है कि किसी ओझा बाबा की कृपा नहीं हुई नहीं तो मुझे ले डूबती।'

'हाँ-हाँ, मरद बड़े समझदार होते हैं। मुझसे पियाज का बोकला मत छोलवाओ नीलू के दद्दा। तुमने भी जो-जो करतूतें की हैं सब मुझे मालूम हैं।'

इतने में उधर से महेन्द्र आता हुआ दिखाई पड़ा। कहीं महेन्द्र कथा सुनने की मनाही न कर दे, इस डर से रधिया का गरजना बंद हो गया। लेकिन शुकदेव ने रधिया को पुनः चिढ़ाने की गरज से कहा—'मैं तो बिना महेन्द्र बाबू के पूछे इस काम में हाथ नहीं डालूँगा।'

'बाप रे बाप, एक बार कह दिया अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग बड़े भ्रष्ट होते हैं। न छूआछूत का विचार, न देवी-देवता पर विश्वास। महेन्द्र बाबू का क्या—आगे नाथ न पीछे पगहा, खाय मोटाय के भइलैं गदहा। मुझे तो जाति-बिरादरी को भी देखना है, उनको भोज-भात

देना है। नीलू की सगाई भी करनी है। उस नासपीटे की राह देखते-देखते जमाना गुजर गया। न कभी चिट्ठी न पत्री।'

'माँ मैं सगाई नहीं जाऊँगी। दद्दा की देख-रेख कौन करेगा?'

'मुई यह भी पगला गई है। गोसाईपुर के चौधरी का लड़का दरोगा हो गया है, उससे शादी पक्की हो सकती है।'

'ना ना माँ, दारोगा से तो मैं विवाह कतई नहीं कर सकती।'

'तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। बेशर्म की तरह अपने विवाह के बारे में आप ही बात कर रही है। अच्छा चल पहले कथा सुनने का प्रबंध कर। अच्छा हाँ, कथा अपने घर में होगी।'

'लेकिन इसके लिए महेन्द्र बाबू से कहना होगा।'

'सुना वह तो करना होगा। मैं कल तड़के चली जाऊँगी, तुम लोग पूछ कर आना।'

दूसरे दिन रधिया और नीलू ने खूब लग कर घर की सफाई की। यद्यपि गायों की नादों को देखकर दोनों बहुत रोईं फिर भी उन्होंने सफाई के काम में शिथिलता नहीं दिखाई। शुकदेव का मन इस काम में नहीं लग रहा था, इसलिए वह घर के पास की नीम के नीचे खाट डालकर पड़ा रहा। आज रात को तीनों ने भोजन यहीं किया।

प्रातःकाल तड़के शुकदेव बाजार चला गया और रधिया पंडित गंगादत्त से कथा बाचने के लिए कह आई। घर लौटते समय अपनी बिरादरी के दस-पाँच आदमियों को भी न्योता देती आई। महेन्द्र के यहाँ से केले के पत्ते माँग लाए गए। माँ-बेटी सत्यनारायण का प्रसाद बनाने में जुट गईं।

संध्या को प्रसाद पाने वालों की छोटी मोटी भीड़ जुट गई। पंडित गंगादत्त कंधे पर झोला लटकाए, जिसमें एक ओर सत्यनारायण की

बटिया विराजमान थी तो दूसरी ओर लोटा-गिलास। उनके साथ छोटे-छोटे लड़कों की बटालियन भी थी। लड़के शस्त्रास्त्र से खाली नहीं थे—किसी के हाथ में गिलास था तो किसी के कटोरा। दो-चार लड़कों ने गिलास-कटोरा के अभाव में लोटे ले रखे थे।

अहीरों की छोटी-मोटी मंडली भी एकत्र हो गई थी—कुछ के कानों में सोने की बालियाँ चमक रही थीं और कुछ के हाथों पर बिजायठ शोभा पा रहा था। कुछ अपनी तेल पी हुई लाठियों में ही मगन थे।

कथा आरंभ हुई। रधिया और शुकदेव गाँठ जोड़ कर बैठे। इसी बीच एक आदमी ने गंगादत्त के हाथ में एक चिट्ठी दी और उनसे कहा इसे अभी पढ़ लीजिए, बहुत जरूरी चिट्ठी है। गंगादत्त ने चिट्ठी पढ़कर जेब में रख ली। कथा समाप्त होने के बाद जब उन्होंने भरपूर दक्षिणा ले ली तब शुकदेव को संबोधित करते हुए कहा—'भई शुकदेव मैं तो भोजन नहीं करूँगा।'

'क्यों, महराज!'—शुकदेव ने आश्चर्यपूर्वक पूछा।

'कोई विशेष कारण नहीं है।'

'आपके भोजन न करने से हमें फल नहीं मिलेगा। ऐसा नहीं होगा महराज।'

'थोड़ा मुझे जाति-बिरादिरी का रुख भी देखना है, शुकदेव। मैंने साहस पूर्वक कथा ही कह दी, यही बहुत हुआ।'

'इसका मतलब समझ में नहीं आया। थोड़ा फरियाय कर कहें बाबा'—रधिया बोली।

'रमई की चिट्ठी आई है कि ब्राह्मणों ने यह निश्चय किया है कि शुकदेव के घर भोजन करने वाले को अजात कर दिया जायगा।'

'काहें को भैया'—शुकदेव ने आँखें फाड़कर कहा ।

'उनका कहना है कि शुकदेव का कुटुंब बड़ा भ्रष्ट है ।'

'चमइनिहां रमई से भी गए बीते हैं हम लोग । मारे हाड़ के चमारों ने उसको अधमरा कर दिया था तब उसकी बभनई कहाँ गई थी । सात चूहा खाय के बिलार भइनी भगतिन ।'

गंगादत्त ने झोला उठाया ही था कि शुकदेव लाठी लिए हुए सामने आ गया और बोला—'दान-दच्छिणा में छूत नहीं लगी थी, भोजन में छूत लग गई । भोजन तो करना ही होगा ।'

'भाई तुम अपनी दच्छिणा ले लो । भोजन करके मैं कुजात नहीं हो सकता । मुझे लड़के-लड़कियों का विवाह करना है ।'

रधिया ने बीच-बचाव किया और गंगादत्त ने चुपके से अपना रास्ता लिया ।

जब गंगादत्त की बातें अहीरों के कानों में पड़ीं तब वे भी काना-फूसी करने लगे । चौधरी चुपके से उठकर खिसक गए । एक-एक कर और लोग भी जाने लगे । इस भगदड़ को देखकर रधिया उन लोगों को बुलाने गई । रधिया को देखकर सब लोग एक साथ ही उठ पड़े और बिना उसकी ओर देखे हुए अपने अपने घरों की राह ली । रधिया जोर से चिल्लाकर बोली—'दोहाई चौधरी की, हमारी इज्जत आपके हाथ में है ।'

भीड़ ने उसकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया । पर एकने रधिया का उत्तर देते हुए कहा—'जिसकी लड़की सात घर की हाँड़ी चाटती फिरती है उसके घर भोजन कैसे हो सकता है । गंगादत्त ठीक कहता था—बहुत ठीक कहता था ।'

रधिया रो पड़ी। आज बिरादरी वालों ने उसकी नाक काट ली। वह समझती थी कि उसके जीवन का नया अध्याय खुलने वाला है। ठाकुर साहब से मोर्चा लेने के कारण अहीरों में उसकी मान-मर्यादा बढ़ जायगी ऐसा उसका विश्वास था। पर उसके विश्वासों की नींव इतनी खोखली होगी, उसका ऐसा ख्याल न था।

पूड़ी उधर सूख रही थी। राँधा हुआ भात उधर बिलबिला रहा था तरकारी का ढेर इधर पड़ा हुआ था, दाल अभी चूल्हे पर ही सूख रही थी—सब कुछ अस्त-व्यस्त और तितर-बितर।

शुकदेव की रीढ़ टूट गई, रधिया की आँखों में अँधेरा छा गया पर नीलू के मनमें बार बार एक प्रश्न उठने लगा—'हम अहीर नहीं हैं, तो क्या हैं?' एक क्षण बाद जैसे उसने प्रश्न का उत्तर पा लिया हो। उसकी आँखों में ज्योति की आभा जगमग कर रही थी।

दूसरे दिन नीलू प्रातः काल महेन्द्र के यहाँ पहुँची। महेन्द्र ने देखा उसका चेहरा अनावश्यक रूप से गंभीर है। वह चुपचाप महेन्द्र के पास खड़ी हो गई। महेन्द्र कहीं जाने की तैयारी कर रहा था। उसने धीरे से पूछा—

'इतने सबेरे कहाँ नीलू?'

'आप ही के यहाँ। लेकिन आप तो कहीं जाने की तैयारी में हैं।'

'पास के नाले में बाँध बन रहा है। बरसाती पानी यहीं इकट्ठा किया जायगा, और आसपास के खेतों की उसी से सिंचाई होगी। मुझे वहीं पर जाना है। पर तुम कैसे चली?'

'कल एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। उसी का समाधान ढूँढ़ने आई हूँ।'

'क्या है?'

'गंगादत्त ने हमारे यहाँ भोजन नहीं किया। उनकी देखा देखी हमारी बिरादरी के लोग भी चले गए। उन लोगों ने हमें अजात कर दिया है, हुक्का—पानी बंद कर दिया है।'

'इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। मैं तो अहीर हूँ नहीं। इस काम का निबटारा तो तुम्हारी बिरादरी के लोग ही कर सकते हैं।'

'यह तो मालूम है कि आप ठाकुर हैं पर...'

'यही तो तुम गलत सोचती हो, गाँव गलत सोचता है।'

नीलू को आश्चर्य और कुतूहल हुआ! उसने पूछा—'फिर क्या हैं आप?'

'बस आदमी।'

'पर गाँव के लोग तो कहते हैं कि आप ठाकुर हैं, माँ भी कहती है कि आप ठाकुर हैं, पिताजी भी कहते हैं कि आप ठाकुर हैं।'

'किसी के कहने से तो कुछ हो नहीं जाता है। मैं मैं हूँ, मैं आदमी हूँ। आज नहीं तो कल गाँव वाले इसे समझ जाँयगे।'

'भला यह कैसे संभव हो सकता है?'

'यदि तुम सहयोग दो तो मैं इसे दिखा सकता हूँ।'

'मैं तैयार हूँ।'

'तैयार हो। सोच-समझ कर कहना। मुकरना अच्छा नहीं होगा।'

'नहीं, मुकरूगी नहीं।'

'यदि अहीर तुमको अहीर नहीं मानते तो तुम अहीर नहीं हो।'

'मैं भी आदमी हूँ।'—नीलू मुस्कराई।

'अब तुम ठीक ढंग से सोच रही हो।'

'हाँ तो बतलाइए न, मेरा क्या सहयोग आप चाहते हैं?'

'नीलू, सच कह दूँ। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।'—महेन्द्र कुछ झेंप-सा गया।

'तो इसमें आपको कौन रोकता है ?'

'तुम।'

'आप तो हँसी कर रहे हैं ?'

'मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ।'

'मैं इस पहेली को नहीं समझ रही हूँ।'

'कहने का अर्थ यह है, मैं कहना यह चाहता हूँ, मेरा तात्पर्य यह है कि...'—महेन्द्र रुक गया और एक क्षण के लिए नीलू के आयत-नेत्रों की ओर देखा।

'आपका तात्पर्य खाक है।'—नीलू ने थोड़ा तमक कर कहा।

'मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। है मंजूर।'

नीलू अवाक् हो गई। उसके रोंगटे खड़े हो गए, क्षण भर के लिए उसके शरीर में बिजली की करेंट दौड़ गई।

'यह कैसे संभव है ? कहाँ आपका उच्च कुल, क्षत्रिय-वंश और कहाँ हमारी छोटी जाति !'

'इसका उत्तर मैं पहले ही दे चुका हूँ।'

'लेकिन मैं आपके योग्य नहीं हूँ।'

'किस माने में। रूप और यौवन में तो तुम तुम हो। बुद्धि भी कुछ कम तीक्ष्ण नहीं है। तब ?'

नीलू के चेहरे पर लाल-पीला रंग दौड़ने लगा।

'लेकिन लोग-बाग क्या कहेंगे ?'—नीलू ने अपनी आँखें जमीन में गड़ा दीं।

'जब मेरा रास्ता ठीक है तब लोग-बाग क्या कह सकते हैं। तुममें साहस होना चाहिए। हाँ अपनी माँ से तुम पूछ लो।'

महेन्द्र बाँध की ओर चला गया और नीलू घर की ओर। प्रसन्नता से उसके सारे शरीर में एक विचित्र सिहरन उत्पन्न हो गई थी। रास्ते में मानो उसके पैरों में पर लग गए। रह रह कर उसका संपूर्ण मन विवाह के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा था। घर आने पर रधिया ने देखा कि नीलू की आँखों में अजीब हर्ष और उल्लास छाया हुआ है। लेकिन इस अनबूझ पहेली को वह ठेठ ग्रामीण बुढ़िया क्या समझती? किंतु उसने इतना अवश्य पूछा—

'महेन्द्र बाबू के यहाँ गई थी।'

'हाँ—माँ।'

'यहाँ की सारी कहानी बता दी।'

'हाँ—माँ।'

'क्या कहा उन्होंने।'

'उन्होंने कहा कि तुम अहीर नहीं हो।'

'अयँ!'

'उन्होंने भी वही कहा। तब हम क्या हैं?'

'आदमी।'

'और महेन्द्र बाबू।'

'बस आदमी।'

'उनकी बात हमारी समझ में नहीं आती।'

फिर नीलू ने रधिया के कान में कुछ कहा और वहाँ से भाग गई।

'ना-ना यह नहीं हो सकता। इतना बड़ा अनर्थ—इस लोक और परलोक दोनों में मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। जो कुछ हमारे

कुल में होता रहा है वही होगा। इससे अच्छा तो गोमती में डूब मरना है। भला अपनी बिरादरी में नीलू के दद्दा कैसे मुँह दिखाएँगे? वे लोग तो बड़े आदमी हैं। उनका कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। पर हमारी तो नाक कट जायगी।'—रधिया जोर जोर से बड़बड़ा रही थी।

नीलू ने दीवाल की आड़ से छिपकर सब कुछ सुना। उसके हृदय पर गहरा आघात लगा। उसकी सारी कल्पनाएँ क्षणभर में चकनाचूर हो गईं। पर सोचने लगी कि पता नहीं उसको अभी क्या-क्या देखना बदा है। घर के कोने में जाकर आँखों की राह अपनी ठेस और वेदना को वह घंटों निकालती रही। रधिया उसको खोजती हुई जब घर के कोने में पहुँची तब कहीं जाकर उसका रोना बंद हुआ, पर हिचकियाँ तो अभी भी आ रही थीं।

रधिया वहाँ से लौटकर शुकदेव के पास गई और धीरे-धीरे सारा समाचार उससे कह दिया। शुकदेव एकदम सन्नाटे में आ गया। अत्यंत ग्लानिपूर्ण शब्दों में कहा—'दारोगा की ठोकरों से मर गया होता तो अच्छा होता रधिया। आफतों से टकराते—टकराते बूढ़ा हो चला, जिन्दगी के बाकी दिन भी पता नहीं कैसे बीतेंगे। चल देखें तो वह पागल कहाँ है?'

बेटी की दशा देखकर बूढ़े बाप का हृदय पसीज उठा। लेकिन इतने दिनों के संस्कारों का बोझ एक झटके में वह कैसे फेंक सकता था। वह मर्माहत-सा खड़ा रहा फिर बिना एक शब्द बोले अपनी जगह पर लौट आया।

इतने में डाकिए ने शुकदेव का नाम पुकारा—तुम्हारी एक चिट्ठी है भगत, भेजनेवाला है कन्हई। कन्हई का नाम सुनते ही मानो डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। घर से गायब होने के बाद यह

कन्हई की पहली चिट्ठी थी। शुकदेव ने रधिया को बुलाया और कहा कि कन्हई की चिट्ठी आई है; नीलू से कहो कि उसे पढ़कर देखे कि उसमें क्या लिखा है। रधिया ने चिट्ठी ली और तुरत नीलू को दिया। उसके मन से भी एक बोझ सा उतर गया। रधिया ने कहा—पढ़ो बेटी क्या लिखा है? कब आ रहा है? भला उसने सुध तो ली। पर नीलू का चेहरा काला पड़ गया, आँखों के सामने अगणित शून्य बनते-बिगड़ते दिखाई पड़ने लगे। आँखों के कोयों में दो बूँदे लुढ़क आईं। वे गालों पर रेखाएँ खींचती हुई कब अधरों के कोरों से मिलकर उन पर फैल गईं उसे मालूम नहीं पड़ा। नीलू ने पत्र पढ़ना आरंभ किया—

'सोस्ती श्री सर्व उपमा जोग शुकदेव बाबा को पालागन पहुँचे। अइया के चरणों में प्रणाम। मैं कुशल से हूँ। आप लोगों का कुशल श्री बंबादेवी से नेक मनाया करता हूँ। बाबा आगे मालूम करना कि मैं फिजी टापू चला गया था। वहाँ से परसों लौटा हूँ। रास्ता बड़ा विकट है—किसी प्रकार सात समुन्दर पार करता हुआ बंबई तक आया। समुंदर में बड़ी ऊँची-ऊँची लहरें उठती थीं, पर नीलू और तुम लोगों की याद करते हुए मुझे तनिक भी डर नहीं लगा। मैं भगवान दत्त के लड़कों के पास ठहरा हूँ। इनके लड़कों से जो भयानक समाचार मैंने सुना उससे हमारे रोंगटे खड़े हो गए। मेरे पास कई पेटियाँ थीं—गहनों की और कपड़ों की। कपड़ों की पेटियों को मैंने समुन्दर देवता के हवाले कर दिया, किंतु गहनों की पेटियाँ भगवानदत्त के लड़कों के पास हैं। मैंने सुना है कि नीलू को ठाकुर साहब के छोटे भाई ने अपने घर में बैठा लिया है। जिसके लिए मैं समुन्दर की लहरों से झगड़ता हुआ, प्राणों की परवाह न करते हुए भागा चला आ रहा था, उसी ने मुझे धोखा दिया। बाबा, मेरी छाती नहीं फट गई और सब कुछ हो गया। मैं नीलू का क्या

दोष दूँ, मैंने भी तो कभी सुध-बुध न ली। अच्छा हमारी गलती माफ हो। मैं कलके जहाज से फिर वहीं लौट जाऊँगा। सबको प्रणाम।

आपका—
कन्हई

पत्र पढ़ते समय ही नीलू की आखों से आँसुओं की अविरल वर्षा हो रही थी। रधिया तो पछाड़ खाकर गिर पड़ी। उसके गिरने का शब्द सुनकर शुकदेव दौड़ा दौड़ा आया—उसने देखा माँ-बेटी जमीन पर पड़ी-पड़ी सिसकियाँ भर रही हैं। कुछ देर तक हतप्रभ-सा वह अपने स्थान पर खड़ा रहा। इस रहस्य का पता लगाने में अपने को असमर्थ पाकर शुकदेव अपनी जगह लौट आया।

जब रधिया को होश हुआ तब वह शुकदेव के पास पहुँची। उसने कहा कि बुरा हो रमया का; उसने सब चौपट कर दिया आज रही-सही आशा भी टूट गई। नीलू की जिन्दगी अकारथ गई। मुझे तो कुछ सुझाई भी नहीं पड़ता है। एक महेंद्र बाबू का भरोसा था लेकिन वे भी एक ही घाघ निकले। अपना कोई नहीं रह गया। अब तक तो जिन्दगी किसी तरह कटी लेकिन अब मौत आ जाती तो अच्छा होता। हमलोग तो किनारे के पेड़ हैं पर नीलू की तो सारी जिन्दगी पड़ी है। उसका क्या होगा भगवान। उसका क्या होगा ?

शुकदेव चुप था। उसे चारों ओर आकाश में भयंकर जन्तु दिखाई पड़ते थे जो जीभें निकालकर उसकी ओर लपक रहे थे। आँखों के सामने रह-रह कर धुंध छा जाता था। वह जोर से चिल्ला उठा—'बचाओ राधे, बचाओ, जान गई।'

रधिया ने उसे बाहों का सहारा दिया। कुछ देर के बाद उसे होश हुआ लेकिन जबान नहीं खुली।

———

चौदह

नीलू के मन में विचारों के बवंडर उठ रहे थे। जिन्दगी भर नदी के आवर्तों से लड़ती हुई उसकी नौका ज्यों ही किनारे लगने वाली थी त्यों ही अदृष्ट ने उसे पुनः आवर्तों में ढकेल दिया। धूप और पानी की मारी हुई नौका में इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि लहरों के झकोरों को सहन करती। न तो नाविक के हाथों में पहली शक्ति थी और न मस्तिष्क में वह स्फूर्ति।

अस्ति-नास्ति के बीच में पड़ी हुई नीलू किसी अंतिम निश्चय पर नहीं पहुँच पा रही थी। एक ओर माँ-बाप के संस्कारों की अवहेलना करने में वह असमर्थ थी तो दूसरी ओर महेन्द्र के आकर्षण को रोकने में निःशक्त। वह जानती थी कि महेन्द्र के आकर्षण का मार्ग मंगलमय तथा स्फूर्तिदायक है, लेकिन रूढ़ियों के बंधनों को तोड़ देना सहज नहीं था। रह-रह कर उसके मन में महेन्द्र की बात कचोट उठती थी--- 'मेरी कोई जाति नहीं है। मैं मनुष्य हूँ।' बात कितने पते की है। पर इसे मानने के लिए हमारा समाज कहाँ तैयार है? क्या समाज के इन बंधनों को तोड़ डालना अनुचित है? कभी नहीं। महेन्द्र बाबू स्वयं भी तो ऐसा कह रहे हैं। तो मैं ही क्यों पीछे हटूँ? उनकी शिक्षाएँ बेकार जायँगी? उनका त्याग निष्फल होगा। क्या नदी का भयंकर कगार तोड़ने में वे असमर्थ होंगे—वह भी केवल मेरी कमजोरी से।

माँ मरी जा रही है, पिता पागल हो रहे हैं। इनके प्रति भी मेरा कर्त्तव्य है। क्या माँ को मर जाने दें? क्या पिता को पागल हो

जाने दें ? मुझसे नहीं हो सकेगा। फिर मैं क्या करूँ ? कोई राह सुझाई नहीं पड़ती है। इसी तरह घुल-घुल कर अपने को गला दें। उनके पत्र ने आज अंतिम आशा पर पानी फेर दिया। हे भगवान हमें मार्ग दिखाओ। मैं क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आता।

दो प्रहर रात गए उसने गोमती की शरण लेने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं देखा। वह उधर ही बढ़ती गई। अमरूद के बाग में पहुँचकर वह उसी पेड़ के नीचे पहुँची जहाँ महेन्द्र ने एक दिन खड़े होकर उसे पुकारा था। वह रोने लगी। कबतक रोती रही इसका पता उसे स्वयं नहीं लगा। अंत में साहस बटोर कर वह उफनती नदी में झमाक से कूद पड़ी।

नदी के बीच से आती हुई नौका से टार्च की रोशनी हुई। उस पर से 'आदमी' कहता हुआ एक मल्लाह कूद पड़ा। लहरों से लड़ते झगड़ते किसी प्रकार उस अर्धमृत काया को वह किनारे पर लगाने में समर्थ हुआ। महेन्द्र ने नौका किनारे पर लगा दी और टार्च की रोशनी में नीलू को पहचान लिया। उसे औंधा लेटाकर वह तो प्रारंभिक उपचार में लग गया और मल्लाह को शुकदेव को बुलाने के लिए भेज दिया। शुकदेव और रधिया दोनों वहाँ आकर छाती पीटने लगे। महेन्द्र ने कहा—'शोर मत करो नहीं तो केस खराब हो जायगा।'

'कैसी है बिटिया बाबू,'—शुकदेव ने पूछा।

'न तो बहुत अच्छा और न बहुत खराब। नाड़ी की गति बहुत मंद है। इसी से डर मालूम पड़ रहा है।'

'हे भगवान !'—शुकदेव रो पड़ा।

'मैंने एकबार मना किया लेकिन आप मानते नहीं हैं। नाड़ी टूट रही है, सावधान हो जाइए।'

रधिया जोर से रो पड़ी। महेन्द्र ने पुनः उसे मना किया। इतने में नीलू ने दो-तीन के की और फिर पसीने में डूब गई। कुछ देर के बाद उसकी नाड़ी साधारण गति से चलने लगी। महेन्द्र ने उसे उठाकर शुकदेव के घर पहुँचा दिया। घर जाते समय वह कहता गया—आज बाँध के लिए कंकड़ लेने में जो देर हुई पर अच्छा हुआ नहीं तो नील सदा के लिए चली जाती। दद्दा, उसे सोने देना। सबेरे आकर मैं पुनः देख लूँगा।

प्रातः काल तक भी नीलू को होश नहीं हुआ। महेन्द्र ने रधिया को कड़ुवे तेल की मालिश करने के लिए कहा। महेन्द्र ध्यानपूर्वक उसके चेहरे को देखने लगा। उसके गालों पर रंग आ रहा था, पलकों में हरकत मालूम पड़ रही थी, ओठों में कंपन दिखाई दे रहा था। महेन्द्र ने संतोष की साँस ली।

'नीलू!'—रधिया चिल्ला उठी।

धीरे-धीरे दो बड़ी-बड़ी आँखें खुलीं। अभी इन आँखों में सूनापन भरा हुआ था पर शीघ्र ही उनमें ज्योति उतर आई और उसकी एक धुँधली रेखा से उसके पीले अधरोष्ठ रंग गए। अपने निर्जीव हाथों को उसने अपने सीने पर रख लिया।

'नीलू'—धीरे से महेन्द्र ने पुकारा।

'कौन, महेन्द्र बाबू!' स्वर का अत्यंत मद्धिम तार बज उठा। चेहरे पर कृतज्ञता और लज्जा की नीली-पीली छायायें उगने-डूबने लगीं।

महेन्द्र की दृष्टि शुकदेव की ओर गई—उसका सारा शरीर जैसे थककर चकनाचूर हो गया हो। संघर्षों से घिसा हुआ निर्जीव आखों से

वह यह सब देख रहा था। फिर भी उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता था—उसके सामने अगणित धुँधली छायाएँ घूम रही थीं।

'अच्छा हो जायगा, दादा।'—महेन्द्र का इतना कहना था कि जैसे बूढ़े की आँखों में चमक आ गई और लकवे का मारा हुआ शरीर जैसे पुनः स्वस्थ हो उठा।

'क्या हाल है, महेन्द्र बाबू ?'—महेन्द्र ने घूमकर देखा कि गले में आला लटकाए हुए डाक्टर साहब तेजी से चले आ रहे हैं। उनके ठीक पीछे दवा का बक्स लिए हुए एक बालक भी घर में घुसता हुआ दिखाई पड़ा। महेन्द्र की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने दौड़कर डाक्टर को गले लगा लिया।

'बिटिया को बचा ले बाबू ! जो कुछ वह कहेगी हम 'ना' नहीं कहेंगे। यदि वह एक बार बच जाती।'

———

पन्द्रह

यद्यपि महेन्द्र यह जानता था कि रूढ़िग्रस्त जर्जर समाज उसके और नीलू के ग्रंथि-बंधन को स्वीकार नहीं कर सकता, फिर भी वह रमेश के पास गया। रमेश अभी द्वंद्वात्मक स्थिति को पार नहीं कर सका था। वह विचारों में प्रगतिशील था पर व्यवहार में प्रतिक्रिया-वादी। मनसा छुआछूत को नहीं मानता था, लेकिन जीवन में कभी ऐसा अवसर नहीं आने दिया जब उसे किसी अछूत के हाथ का पानी पीना पड़ा हो। अपने भाषणों में वह मंदिरों और डीहों के पुजारियों की निन्दा करता था परंतु जब कभी किसी डीह या मंदिर से होकर वह गुजरता था तब सबकी आँखें बचाकर उनके सामने प्रणत हो जाता था। यदि लोगों से बचने का अवसर नहीं मिलता था तो मन ही मन प्रणाम कर अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देता था। स्त्री-शिक्षा का बहुत बड़ा पक्षपाती था पर अपने घर की लड़कियों को स्कूल में कदम नहीं रखने देता था।

जब महेन्द्र ने रमेश से अपने विवाह का समाचार कहा तब सुरेश को ऐसा लगा मानो विस्यूवियस का ज्वालामुखी फूट पड़ा हो अथवा हिरोशिमा और नागासाकी पर अमरीकी एटमबम गिरा हो। वह महेन्द्र को एकटक देखता रहा—निर्वाक और किंकर्त्तव्यविमूढ़। उसके कानों को विश्वास नहीं हुआ। उसने पूछा—'क्या कहा तुमने महेन्द्र?'

'पूर्णिमा को नीलू के साथ हमारा पाणिग्रहण संस्कार होगा। मेरा आग्रह है कि तुम उसमें जरूर सम्मिलित होओ।'

रमेश पुनः चुप हो गया और लंबी-लंबी साँसे भरने लगा। थोड़ा ठहर कर बोला—'अंत में तुमने सिद्ध कर दिया कि तुम बहुत बड़े क्रांतिकारी हो, लेकिन जमाने के साथ चलना अधिक अच्छा होता है।'

'और पिछड़े हुए समाज को जमाने के अनुरूप मोड़ना क्या कम अच्छा है?'

'क्या रूढ़ियों के प्रति यह तुम्हारी प्रतिक्रिया मात्र नहीं है विवाह प्रतिक्रिया नहीं है, वह मन, आत्मा और शरीर का पूर्ण तादात्म्य है। जहाँ विवाह प्रतिक्रियामूलक होता है वहाँ एक सीमा के बाद वह टूट जाता है, छिन्न-भिन्न हो जाता है।'

'तुम ठीक कहते हो। पर इसके पीछे आत्मा की पुकार है, अटूट निष्ठा है। इसे प्रतिक्रिया नहीं कह सकते।'

'क्या सचमुच तुम नीलू को प्यार करते हो?'

'अवश्य।'

'उसके अद्वितीय सौन्दर्य और अल्हड़ यौवन को?'

'जरूर, पर इनके साथ उसकी आत्मा को भी, उसके मन को भी। सामान्य संबंधों से इसका महत्व कहीं अधिक है। यह दो प्राणियों का वह स्फूर्तिपूर्ण संबंध है जो जीवन को बल और प्रेरणा देता है। बरसाती बूँदों के स्पर्शमात्र से जिस प्रकार जलती हुई धरती को शीतलता मिलती है, उसमें नए-नए अंकुर उत्पन्न होकर उसे उमंगपूर्ण और लहरदार बना देते हैं, उसी प्रकार इस तरह के संबंध जीवन में नई लहरें उठाते हैं, अगम्य जीवन यात्रा के लिए संबल एकत्र करते हैं।'

'महेन्द्र तुम रोमैंटिक हो रहे हो।'

'यहीं पर तुम गलती करते हो। रोमांस की मखौल नहीं उड़ाई जा सकती बशर्ते कि उसमें सच्चाई हो। तुच्छेपन को मैं रोमांस नहीं मानता। वह भी जीवन के किसी स्पन्दनपूर्ण क्षण की पुकार होती होती है। प्रेम के क्षण विशेष में मनुष्य अपना जंगलीपन भूल जाता है, अपने स्वार्थों से पूर्णतः रिक्त हो जाता है। इसी क्षण में उसकी सच्ची मानवता उद्घाटित होती है। वह अपना सब कुछ उत्सर्ग करने के लिए, बलिदान करने के लिए तैयार रहता है।'

'लेकिन सामान्यतः लोग ऐसा अनुभव नहीं करते।'

'इसका मुख्य कारण है कि उनकी चेतना रूढ़ियों से इतनी बुरी तरह आच्छादित रहती हैं कि जीवन के इन क्षणों को वे ठुकरा देते हैं, उन्हें उचित मूल्य नहीं प्रदान करते।'

'भाई मैं तो सामाजिक मर्यादा की अधिक कद्र करता हूँ, मेरा विवाह में सम्मिलित होना असंभव है।'

'मैं तुम्हारी स्पष्टवादिता से प्रसन्न हूँ। कदाचित पहली बार तुम इस प्रकार स्पष्ट हो सके हो। अच्छा, माँ कहाँ हैं?'

'माँ घर में नहीं हैं, किंतु मैं तुम्हारा संदेश कह दूँगा।'

'भूलना मत भाई।'

'इसका विश्वास रखो।'

महेन्द्र गाँव में और किसी के पास नहीं गया। वह जानता था कि उसके इस प्रस्ताव से गाँव में खलभली मच जायगी। मार-मार, थू-थू करने के अतिरिक्त कोई उससे सहमत नहीं हो सकता। वह सीधे छावनी चला गया।

विवाह का दिन आ पहुँचा। नीलू विवाह के एक दिन पूर्व आ गई थी। चारों ओर लोग महेन्द्र को गालियाँ दे रहे थे। ठाकुर साहब

और भगवान दत्त खानदान की प्रतिष्ठा के धूल में मिलने की चर्चा करते हुए इस तरह शोक-मग्न-से बैठे थे मानो साँप अपनी मणि खोकर फण पटक रहा हो। रमई महेन्द्र को वोट देने वालों पर फँबतियाँ कस रहा था। सरजू मुँह लटकाए हुए कह रहे थे—होइहैं वर्ण संकर कलिहि'—गोसाईं जी ने जो कुछ लिखा है सब आँखों के सामने दिखाई दे रहा है।' रधिया और शुकदेव भी अनमने से थे। उनके सामने बार-बार यही प्रश्न उपस्थित होता था—बिरादरी में कैसे मुँह दिखाएँगे ?

गाँव के पंडितों ने विवाह में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। ठाकुर तो ठाकुर अहीरों ने भी इसमें भाग लेने से अपनी असहमति प्रकट की। सारे असहयोग के बावजूद भी महेन्द्र अपने निश्चय पर अटल रहा। 'एकला चलो' का मंत्र उसकी मज्जा में घुस चुका था। फिर भी गाँव के कुछ पढ़े-लिखे लोग, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी, विवाह-यज्ञ में सम्मिलित हुए। चौधरी शंकर दयाल के लाख मना करने पर भी गंगू महेन्द्र के दरवाजे पर आ ही गया। धनपाल सिंह के सिर पटकने पर भी भवँर सिंह वहाँ पहुँचा ही।

फागुन की शीतल हवा ने सौरभ बिखेर दिया। कोकिल का सुरीला संगीत हवा की तरंगों पर तैरता हुआ सारे वातावरण को उन्मादपूर्ण बना रहा था। नीलू के हृदय में उद्वेलन हो उठा। उनके सुगठित शरीर और तरंगित यौवन के भीतर की हलचल, आवेग और प्रसन्नता के उफान, बार-बार अपनी सीमाओं को लाँघ जाते थे, पर संयम और विवेक के बाँध उन्हें बरबस अपने में समेट लेते थे। लेकिन इसके साथ ही जब माँ-बाप की गीली आँखें और मुरझाए चेहरे उसके सामने उभर आते थे तब उसके उल्लास के स्थान पर गहरी वेदना छा जाती थी। फिर भी उसे विश्वास था कि वे विवाह के समय तक छावनी पर आ जाँयगे।

शहनाई की मीठी ध्वनि चारों ओर फैल गई। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। नीरू पुनः भावावेग से भर उठी।

पर किसी को क्या पता कि रधिया और शुकदेव इसी दिन मकान छोड़ देंगे और वे इस समय तक काफी दूर चले गए होंगे। रात के अँधेरे में भी वे चलते जा रहे थे—चलते जा रहे थे। आज उन्हें थकान का अनुभव नहीं हो रहा था, यद्यपि वे भीतर से भरे थे। लगता था वे अपनी सारी यात्रा आज ही समाप्त कर लेंगे। कुछ दूर पहुँचने पर रधिया ने कहा—'अब विवाह हो रहा होगा।'

शुकदेव ने केवल हाँ किया। कुछ देर बाद रधिया पुनः बोली—'अब विवाह हो चुका होगा।'

शुकदेव ने गीले कंठ से कहा—'हाँ, भगवान उसे सुखी रखें।'

वह चुप हो गया। कुछ देर बाद उसने पुनः कहा—रधिया हमें रात रहते काफी दूर चला जाना है—इतनी दूर कि फिर हमारी गंध न मिले।' शुकदेव रो पड़ा।

वह जल्दी-जल्दी डग बढ़ाता आगे चला जा रहा था। रधिया अपनी सारी छटपटाहट और वेदना को मन में समेटे पीछे-पीछे घसिट रही थी।
